(१) कुरान के कुछ अपरिचित तथ्य

(२) इस्लामी शरीअत बुद्धि के आईने में

ओ३म्

॥ कुरआन के कुछ अपरिचित तथ्य ॥

भूमिका = इस्लाम का आधार कुरान और हदीस है। मुसलमान ऐसा मानते हैं तथा दावा करते हैं कि कुरान ईश्वरीय किताब है और उसका एक एक शब्द अल्लाह का कहा हुआ है। उसमें दुनियां के आदमी कोई परिवर्तन नहीं कर सकते। वे यहां तक कहते हैं कि कोई भी मनुष्य कुरान का अर्थ अपनी ओर से नहीं लगा सकता और न आयतों का विश्लेषण अथवा विवेचन ही कर सकता है। इसी आधार पर वे अदालतों में भी न्यायाधीशों को कुरान का अर्थ करने या कुरान की आयतों का स्पष्टीकरण करने की इजाजत नहीं देते। जो कुछ भी पहिले के कुछ मान्य मुस्लिम विद्वान टीकाकार लिख गये है, उन्हें ही प्रमाण मान कर उनकी टीकाओं के आधार पर निर्णय देने तक मुसलमान अदालतों को स्वतन्त्रता देते हैं। भारतवर्ष में इस समय यही स्थिति चल रही है।

यदि राष्ट्र, देश, समाज, व्यवस्था, न्याय और स्वतन्त्रता पर कोई आंच न आये और ये सब प्रभावित न हों, तो किसी को क्या एतराज हो सकता है और वह जबर्दस्ती कुरान की व्याख्या क्यों करता फिरे। पर मुसलमान इस्लामी साम्राज्य की स्थापना का ध्येय लेकर, प्रत्येक गैर-इस्लामी देश में कुरान, हदीस मोहम्मद साहब और मजहब की तौहीनी के बहाने कुछ न कुछ उत्पात करते ही रहते हैं और इस प्रकार ईश्वरीय पुस्तक और ईश्वरीय मजहब की आड़ में अपने समाज को अन्य सभी समाज से अलग रखते हुऐ, अन्य समाज को आतंकित कर अपनी शक्ति बढ़ाते रहते हैं। इस प्रकार कूटनैतिक पद्धति द्वारा शक्ति बढ़ जाने पर वे सभी गैर-इस्लामी चीजों का नामोनिशान मिटा देते हैं। सन १९४८ के बंटवारे के बाद मुसलमानों ने इसी पद्धति से पुनः अपनी शक्ति बढ़ाली है और आज मुसलमान उतने ही खतरनाक और आतंकवादी बन गये है, जितने वे १९४६-१९४७ में थे। पुनः देश के बंटवारे का खतरा सर पर मंडरा रहा है।

इस स्थिति को लाने में मुसलमान तो ईमानदारी और खुले रूप में पुरानी पद्धति अपना कर काम कर रहे हैं पर हिन्दू समाज बिलकुल सोया हुआ है। कांग्रेस संस्था १९२० से १९४७ तक मुसलमानों के तलुऐ ही चाटने वाली रही है और अब वह पहिले से भी ज्यादा हो गई है। कांग्रेस तो सत्ता की भूखी है ही, वह नोट, वोट-सत्ता के चक्र में फंसी हुई अंधी हो रही है। कांग्रेस के अलावा बाकी राजनैतिक दल इस समय श्मशान की शान्ति ओढ़े पड़े हैं। मुसलमानों को निर्विरोध काम करने का जितना अच्छा अवसर आज मिला हुआ है वैसा शायद इस्लाम के १४०० वर्षों के इतिहास में कहीं पर और कभी न मिला होगा। "इस्लाम खतरे में है, कुरान आदि की तौहीनी हो गई, शरीअत हमारा संविधान है, इसे कोई छू नहीं सकता" आदि नारे

आतंक फैलाने और हर समय विरोध प्रगट करने के सफल साधन हैं। शरिअत पर तो मैंने एक छोटी सी पुस्तक "इस्लामी शरिअत बुद्धि के आयने में" लिखी है। अब कुरान के अनदेखे, अपरिचित तथ्यों से गैर-मुसलमानों को परिचित कराने का प्रयास करूंगा। कुरान के सम्बन्ध में निम्न लिखित मुद्दों पर अपने विचार दे रहा हूं यद्यपि मुद्दे और भी बहुत से हैं।

(१) कुरान कैसे समझें (२) कुरान का नाम (३) कुरान कैसे संकलित हुआ। (४) कुरान कहां से और कैसे उतरा (५) कुरान में आयतों के प्रकार और कुरान में विभिन्न पहलुओं पर मतभेद। (६) इस्लाम में अल्लाह [illegible] (६) कुरान की प्रामाणिकता।

(१) <u>कुरान कैसे समझें</u> = इस्लाम का अध्ययन हिन्दुओं ने किया ही नहीं और न अनुसंधानात्मक दृष्टि से कुरान का विवेचन ही किया। इसलिये लोग यही समझते हैं कि कुरान में आयतें हैं, वह एक पुस्तक है। उसके शाब्दिक अर्थ लगा कर विद्वान इस्लाम तथा कुरआन की प्रशंसा के पुल बांध देते हैं। और तो और डा: भगवानदास, महात्मा गांधी तथा संत विनोबा जैसे विचारक व्यक्तियों ने भी कुरान के ~~मनमाने~~ सम्बन्ध में मनमाने विचार लिख कर समाज में एक भ्रम पैदा कर दिया है। इस प्रकार उन्होंने हिन्दू राष्ट्र का अत्याधिक अहित किया है।

भारत में कुरान पर अनुसंधानात्मक दृष्टि से केवल एक पुस्तक हिन्दी में "कुरान-परिचय" के नाम से उपलब्ध है। विद्वान लेखक आचार्य देव प्रकाश संस्कृत और अरबी के पंडित थे संस्कृत और अरबी महाविद्यालय अमृतसर के प्रधानाचार्य थे। "कुरान-परिचय" सन १९६० में ३ भागों में छपी थी, पर अब उपलब्ध नहीं है। हिन्दू धनी मानी राष्ट्र भक्तों को चाहिये कि वे अपने साधनों से उक्त पुस्तक का पुन: सम्पादन करा कर उसे छपा दें। हिन्दी में यही एक ग्रन्थ है जो कुरान को वैज्ञानिक आधार पर परख कर उसकी वास्तविकता को समाज के सामने रख रहा है। मेरी यह लघु पुस्तिका का आधार यही "कुरान-परिचय" है। मैंने अपने अध्ययन से भी जो ज्ञान पाया है वह भी इसमें गूंथा है।

"कुरान को कैसे समझें" इस पर बहुत अच्छा निर्देश "कुरान-परिचय" के पृष्ठ २१ और २२ पर अंकित है। इसे मैं ज्यों का त्यों उद्धृत कर रहा हूं क्योंकि इससे अच्छा वर्णन मैं कर ही नहीं सकता।

"पाठक वृन्द! हम सर्वप्रथम इस बात का स्पष्टीकरण करना चाहते हैं कि सामान्य रूप से मुसलमान या अन्य कोई भी व्यक्ति जो कुरान के केवल अर्थों को पढ़ कर कुरान की वास्तविकता से परिचित होना चाहते हैं, वे सर्वदा भ्रम में हैं। उनके लिये अनिवार्य है कि यदि वे कुरान को उचित रूप में समझना चाहते हैं, तो उन्हें उन साधनों, प्रक्रियाओं, विविध नियमों विविध श्रृंखलाओं, आधारों और व्यवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त करना

होगा, जिनका सम्बन्ध कुरान से है। फिर सम्पूर्ण कुरान समझने योग्य भी नहीं है। उसके हेतु यह भी समझना होगा कि कुरआन के वह कौन कौन से भाग है जो मनुष्य की बुद्धि से परे हैं और जिन्हें केवल खुदा ही समझता है। उन भागों को समझने का प्रयास करने वाले काफिर कहलाएंगे। इसके अतिरिक्त यह भी समझना होगा कि कौन से भाग हैं, जिनका मात्र पठन-पाठन ही उचित है किन्तु उनमें दी गई आज्ञाएं कुरआन की अन्य आयतों से निरस्त हैं अर्थात उन आज्ञाओं को केवल पढ़े किन्तु उनका पालन नहीं करना चाहिये। यह भी देखना आवश्यक है कि कौन कौनसी आयतें किन किन व्यक्तियों के हेतु विशेष रूप से उतरीं और कौन कौन सी सार्वजनिक हैं और किन आयतों की आज्ञाऐं सामान्य हैं और किनकी विशेष।

कुरआन को समझने हेतु उपरोक्त ज्ञान प्राप्ति के साथ साथ यह समझना भी आवश्यक है कि कुरआन के वाक्यों-शब्दों और पंक्तियों को किन किन परिवर्तनों के साथ पाठ किया किया और परिवर्तनों के फल स्वरूप कुरआन की आयतों के वास्तविक अर्थों पर क्या प्रभाव पड़ा?

कुरआन की सात करायतों (पठन शैलों) का प्रभाव कुरआन के मूल स्वरूप पर क्या हुआ? यह ज्ञात करना भी आवश्यक है कि सांकेतिक आयतों में दिया गया संकेत किस व्यक्ति और विषय से सम्बन्धित है।

कुरआन के उतरने का जो ढंग कहलाता है उसके ~~अनुसार~~ प्रकार क्या हैं। साथ ही यह ज्ञान भी आवश्यक है कि क्या मूल स्वरूप जो कुरआन में आज उपलब्ध है, वही था अथवा इस रूप में आने के पूर्व मूल स्वरूप कुछ और था और उसमें काट छांट अथवा घट बढ़ की गई? साथ ही ऐतिहासिक तथ्य का भी ज्ञान करना होगा कि ऐसे कुरआन की आयतों का नजूल (उतरना किन कारणों से होता रहा। सम्पूर्ण कुरआन कितनी अवधि में और कहां कहां उतरा तथा एक ही विषय की पुनरावृत्ति होने से उसमें कितना शाब्दिक अन्तर उत्पन्न हो गया" इत्यादि॥

इसके अलावा कुरान को समझने के लिये निम्न पद्धति से गुजरना पड़ेगा जो मैंने अध्ययन से समझा है:-

(१) मोहम्मद साहब की जीवनी का अध्ययन जिसे प्रामाणित मुसलिम इतिहासकारों ने लिखा हो। इस सम्बन्ध में जितनी भी पुस्तकें मिल जावें सभी का विवेचनात्मक अध्ययन किया जाना चाहिये।

(२) यौरोप इंगलेंड, अमेरिका आदि देशों के विद्वानों द्वारा लिखित मोहम्मद साहब की समालोचनात्मक जीवनी जितनी मिल सकें उनको पढ़ी जानी चाहिये।

(३) कुरान अपनी मातृ भाषा में पढ़ें या सीधे अरबी में अगर अरबी आती हो। यह आवश्यक है कि कुरान का अनुवाद अरबी से सीधा मातृभाषा में

में हो तथा अनुवाद का अनुवाद न हो। यही अच्छा रहेगा। अंग्रेजी अनुवाद उसी के मतलब का होगा जो अंग्रेजी को साहित्यिक दृष्टि से भी जानता होगा अन्यथा उससे भ्रम पैदा हो जायेगा।

(४) कुरान में आयतें तिथिवार नहीं हैं अर्थात जिस तारीख-क्रम से वे उतरी हैं उस क्रम से नहीं हैं। अतः कुछ योरोपीय विद्वानों ने पूर्ण परिश्रम करके यथा सम्भव आयतों को क्रम से लगाकर उनके कारण भी दिये हैं। इस प्रकार के अन्य मुसलिम विद्वानों तथा अन्य विद्वानों को पढ़े।

(५) अरब का इतिहास भी पढ़ें जो कम से कम एक ईसवी सन से सातवीं शताब्दी तक का हो। अरबों के सामाजिक और कबीलों से सम्बन्ध रखने वाले इतिहास पर विशेष रूप से गौर करें।

(६) इतना कर लेने के बाद मोहम्मद साहब के पैगम्बरी जीवन अर्थात सन ६१० से ६३२ ई तक का उनका समालोचनात्मक जीवन चरित्र सामने रखें और उसी समय की घटनाओं के समकक्ष, उतरी आयतें देखें। अर्थात यथासम्भव मोहम्मद साहब के जीवन में घटी घटनाएं और उसी समय उतरी आयतों को तुलनात्मक रूप से देखें। इस प्रकार कुरान का शानें-नजूल अर्थात उतरने के कारण और उनकी परिस्थिति समझ में आजायेगी। कुरान को साहित्यिक दृष्टि से समझना हो तो उसका निम्न लिखित अध्ययन आवश्यक है:-

(१) उस समय की अरबी भाषा जब मोहम्मद साहब ने पैगम्बरी का दावा किया।

(२) आसपास तथा उन कबीलों की बोलियां जहां जहां मोहम्मद साहब गये एवं मुसलमान मानता है कि उन स्थानों में कुरान उतरी।

(३) अरबी एवं उसके व्याकरण का अच्छा अभ्यास होना चाहिये।

(४) अरबी भाषा के अलावा आसपास के देशों की भाषाएं जिनका प्रभाव अरब जगत पर रहा हो, जाननी आवश्यक है।

(५) कुरान में अनेक आयतें हैं जिनका पता ही नहीं लगता कि उनका अर्थ क्या होगा या वे किस सन्दर्भ में हैं। अतः इस प्रकार की आयतों को समझने के लिये हदीसों का सहारा लेना पड़ेगा। इस दृष्टि से हदीसों का गहरा अध्ययन भी आवश्यक हो जाता है।

(२) कुरान का नाम -

"कुरआन" शब्द के बारे में निश्चित मत मुझे ज्ञात नहीं है। डा. सैल अपने अनुसंधान के आधार पर उसे "करा" धातु से निष्पन्न मानते हैं जो यहूदियों की भाषा का शब्द है। "करा" का अर्थ है पढ़ना। इसी आधार पर यहूदी अपनी धार्मिक पुस्तक को "मकरा" कहते थे। हो सकता है कि पास होने तथा अत्याधिक सम्पर्क के कारण अनेक धातुएं यहूदी भाषा से अरबी में

और अरबी भाषा से यहूदी भाषा में चली गई हो और "करा" धातु दोनों में हो। मोहम्मद साहब ने जो कुछ फरिश्तों से सुना उसे पढ़ दिया। अतः इस पढ़ी गई सामग्री को "कुरआन" नाम दे दिया। अरबी में पाठ करने वाले को "कारी" और पाठ करने के ढंग को "करायत" कहते हैं। बहरहाल मुसलिम विद्वानों के अनुसार संग्रहीत पुस्तक जिसे आज "कुरआन" के नाम से जानते हैं, उसमें ५५ शब्द समानार्थी आते हैं, जिनमें से एक "कुरान" और एक "फुरकान" भी है। कुरान स्वयं यह मानती है कि अल्लाह ने हजरत मूसा को "फुरकान" दिया था। अतः फुर्कान नाम यहूदियों का है। हो सकता है कि, कुरआन नाम वहीं से लिया गया हो। इस पर अनुसंधान जरूरी है।

अब इस पर चर्चा करूंगा कि जब पुस्तक संग्रह हो चुकी तो इस पुस्तक का नाम क्या रखा गया। कुरआन कैसे संग्रह हुई उसे आप अगले अध्याय में पढ़िये। सबसे पहिला संग्रह हजरत अबू बक्र (पहिले खलीफा) के समय पर हुआ। उस समय जब नाम रखने का प्रश्न आया तो सर्वसम्मति से इस संग्रहीत पुस्तक का नाम "मुसहिफ" रखा गया। दुबारा जब इस पुस्तक का संग्रह या सम्पादन (लगभग १२-१३ वर्ष बाद) हजरत उसमान (तीसरे खलीफा) के समय हुआ तब भी इसका नाम "मुसहिफ" ही रखा गया। "कुरआन" शब्द यद्यपि संग्रहीत पुस्तक में अनेक बार आया है पर पूरी पुस्तक को "कुरआन" के नाम से कब से प्रतिष्ठा मिली यह प्रश्न खोज बीन चाहता है। बहरहाल आज जो पुस्तक उपलब्ध है वह कुरआन के नाम से जानी जाती है।

(३) कुरआन कैसे संकलित हुई?

एक हदीस जैद बिन साबित की है जिसे मुजाहिरे हक (निशान) किताब फजायुल-कुरआन भाग २ पृष्ठ २८४ तथा बुखारी ने लिखा है। इसका अनुवाद अल्लामा सियूती ने अपनी पुस्तक "तफसीर इत्तकान" के प्रकरण १८ पृष्ठ १५५ पर दिया है। यह हदीस "तारीखुल खुलफा" में पृष्ठ ५६ पर है। (सन्दर्भ- कुरान-परिचय भाग१ पृष्ठ ८७) इस हदीस के अनुसार कुरान संग्रह की कहानी का सार निम्न प्रकार से है:-

"मोहम्मद साहब की मृत्यु के थोड़े समय बाद यमामा (दक्षिण अरब में एक स्थान) के युद्ध में मोहम्मद साहब के बहुत से साथी जिन्हें कुरआन काफी याद थी, मारे गये। तब हजरत उमर (जो दूसरे खलीफा हुऐ) उस समय के खलीफा हजरत अबू बकर के पास आये और उन्होंने कहा कि अगर ऐसे ही युद्ध हुऐ तो मोहम्मद साहब के लगभग सभी साथी, जिनके पास कुरान सुरक्षित है यानी जिन्हें याद है, मारे जायेंगे और कुरान का अत्याधिक भाग हाथ से जाता रहेगा। अतः कुरान लिखा लिया जावे। इस पर कुरान को इकट्ठा करने और लिखने के लिये श्री जैद बिन साबित (जिनकी यह हदीस है) से कहा

गया। ये [महाशय] मोहम्मद साहब के साथ लिखने का काम कर चुके थे। उन्होंने चारों ओर
घूम कर कुरान इकट्ठा किया। कुरआन टुकड़ों में खजूर के डंठल, सफेद पत्थर की सिलों, ऊंट
की चपटी हड्डियों, काठी की चपटी लकड़ियों, ऊंट की खाल और कागज पर लिखा मिला।
जिन्हें याद था उनसे सुनकर उसे एकत्रित किया गया। इस प्रकार श्री जैद ने ईमानदारी
तथा परिश्रम से कुरान लिखकर हजरत अबू बकर को दे दिया। जब तक अबू बक्र
रहे, वह उनके पास रहा। बाद में हजरत उमर (दूसरे खलीफा) के पास रहा। इनकी
मृत्यु के बाद इनकी लड़की एवं मोहम्मद साहब की विधवा पत्नी हजरत हाफसा के
पास रहा। इस प्रकार कुरान संकलित हुआ और इसका नाम "मुसहिफ" रखा गया।
(सन्दर्भ- कुरान परिचय पृष्ठ ८८-८७ भाग १)। इस मुसहिफ की नकलें की गई और
आवश्यकतानुसार साथ ले जाई गई। इसके बाद १२-१३ वर्षों में मुसलमानों ने
सैकड़ों मील के दायरे में विजय पाई। फलतः नव-मुसलिम समाज तथा मुसलिम
राज्य बने। ~~दूर~~ दूर दूर तक फैलने के कारण कुरान के हिस्से या पूरा कुरआन विभिन्न
भाषाओं में कहा जाने लगा। कुरान पढ़ने के सात प्रकार हुये। फलतः आपसी मत-
भेद बढ़ने लगे। यहां तक होने लगा कि प्रत्येक अपनी बात को सत्य और दूसरे
को झूठा कहने लगा। जब यह बात हजरत उसमान को मालूम हुई तब उन्होंने
दुबारा कुरान को तय्यार कराया और उसकी नकलें कराकर चारों ओर भेजीं। इन
नकलों के अलावा बाकी पुराने सभी आंशिक या पूरी कुरान जला देने के आदेश
हुये और वे जला दिये गये। इस सम्बन्ध में निम्न लिखित तथ्यों पर ध्यान
देने की आवश्यकता है :-

(१) अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि श्री जैद ने पूरी ईमानदारी और निष्ठा से कुरान का
संग्रह किया था और उसे प्रारम्भ से अन्त तक सतोसर-लगातार लिखते गये। मतलब
यह है कि उस कुरान में अध्याय विराम आदि नहीं थे। अल्लामा सियूती द्वारा दिये
गये विवरण (तफसीरे-इतकान प्रकरण १८ पृष्ठ १६०-६१) के प्रमाण पर ध्यान
देने पर मालूम होता है कि प्रथम कुरान हिस्सों में अलग अलग लिखा गया था।

(२) जब हजरत उसमान ने दुबारा संकलन कराया, तब यद्यपि उसका प्रथम
संकलन हजरत हाफसा के पास से मंगवाया गया था किन्तु ऐसा लगता है कि
काफी लोगों ने इकट्ठा होकर कुरआन पुनः तय्यार किया और अरब की
अन्य सभी भाषाओं के शब्दों को हटा कर केवल मक्का में बोली जाने
वाली अरबी भाषा के ही शब्द रखे। अल्लामा सुयूती के उपर्युक्त संदर्भ
में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है "इसलिये उस्मान ने कुरआन के सहुफ़
को एक ही मुसहिफ में सूरतों की तरतीब के साथ एकत्रित कर दिया।
और समस्त अरबी भाषाएं छोड़ कर केवल कुरैश की भाषा पर ही
इक्तफा (सीमित) कर ली" (कुरान-परिचय भाग १ पृष्ठ ११४)। इस प्रकार
आप देखेंगे कि कुरान को वर्तमान स्थिति में पहुंचने के पहिले ही उसमें

दो विशाल परिवर्तन हो चुके थे।

(३) अब तीसरे परिवर्तन पर जो दूसरे परिवर्तन से भी अधिक महत्वपूर्ण और दूरगामी प्रभाव रखता है गौर करें। मुकद्दमें तफसीर हक्कानी नामक पुस्तक के जो इस्लामी जगत में मान्य है, पृष्ठ १४८ से १५१ तक इस विषय पर विस्तृत वर्णन आया है जिससे ज्ञात होता है कि हजरत उसमान द्वारा संकलित कुरान यद्यपि मक्का की बोली में ले आया गया था पर प्रत्येक देश में पढ़ने के ढंग के आधार पर अर्थों में अन्तर होना बंद नहीं हुआ। चूंकि उस समय की लिपि में मात्रायें और पूर्णविराम नहीं लगते थे, अतः पास पास शब्दों को एकसाथ या अलग अलग पढ़ने या वाक्यों में अपनी अपनी इच्छाओं के अनुसार ठहराव करने के कारण अर्थ परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक था। मौहम्मद साहब के साथियों में से ८ पाठ करने वाले (कारी) मान्य थे (१) उसमान (२) अली (३) उब्बय बिन काब (४) जैदबिन साबित (५) अब्दुल्लाह बिन व मसऊद (६) अबू दरदा (७) अबू मूसा अशअरी। इन्हीं सात ८ पाठ करने वालों के शिष्य चारों ओर फैले और अपने अपने गुरुओं की पद्धति के अनुसार कुरान पाठ करने की तालीम देने लगे। इसके बावजूद पूर्व उल्लिखित समस्या बनी ही रही। तब मौहम्मद साहब के पुराने कुछ साथियों ने इस पुस्तक में मात्रायें तथा पूर्ण विराम लगाये तथा ठहरने के उचित और अनुचित स्थानों को निश्चित कर दिया। उन्होंने ही तीस पारा बनाए। प्रत्येक पारा के ४ भाग कर उनमें रुकुअ की आयतों पर चिह्न लगा दिये।

इस प्रकार जो कुरान के नाम से पुस्तक प्रसिद्ध है वह इतने परिवर्तनों के बाद वर्तमान स्थिति में आई है। कुरान के सम्बन्ध में अनेक मतभेद और अन्य बातें "कुरान की प्रामाणिकता" अध्याय में आपको पढ़ने को मिलेंगी।

(४) कुरान कहां से और कैसे उतरा ?

मुसलमानों की मान्यता है कि अल्लाह ने एक "लौहे-महफूज" अर्थात सुरक्षित पट्टी या स्लेट या तख्ती दुनिया बनने के ५० हजार साल पहले बनाई थी। इसके बाद कलम बनाई और उसे आदेश दिया कि वह उस पट्टी पर वे सब बातें लिख दे जो पहले हो गई हो या आगे होने वाली हों। इस प्रकार इस लौहे-महफूज में पूरा ज्ञान अल्लाह ने लिखवा दिया है। इसे वे "उम्मुल किताब" अर्थात किताबों की मां कहते हैं।

विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न बातें इस पट्टी के बनने, आकार प्रकार, समय आदि के बारे में कही हैं, जो साधारण मनुष्य की बुद्धि में आ ही नहीं सकती। कोई कहता है कि यह ५०० वर्ष की यात्रा के बराबर लम्बी है और ३०० वर्ष की यात्रा के बराबर ऊंची है। कोई कहता है कि यह जमीन से आसमान तक ऊंची है और पूर्व से पश्चिम तक लम्बी है। कोई कहता है कि यह मोतियों की

बनी है। तथा चारों ओर लाल लगे हैं। बहरहाल इस पट्टी में ज्ञान दर्ज है और अल्लाह उसे देखता रहता है तथा उसकी रक्षा करता है। जो भी ज्ञान अल्लाह मोहम्मद साहब को देना चाहता था, उसने इस "उम्मल किताब" से छांट कर अलग कर लिया था और फरिश्ते उसे आसमान के सब से नीचे वाले भाग "बैतुल-इज्जत" में ले आये हैं। जब और जैसी जरूरत मोहम्मद साहब को पड़ी, उसके हिसाब से ज्ञान मोहम्मद साहब के पास पहुंचाया जाता रहा।

ज्ञान पहुचने के ४ साधन मोटे तौर पर माने जाते हैं। (१) वही (२) स्वप्न (३) जिब्रील का मनुष्य वेश में आना (४) अल्लाह का सीधे ज्ञान देना, परदे के पीछे से। इसके अलावा और भी काल्पनिक ढंग कहे जाते हैं।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि लौहे-महफूज लिखने, पूरी पट्टी से कुरान लाने और उसे मोहम्मद साहब तक पहुंचाने की प्रक्रिया में मुसलिम विद्वानों में अनेक मतभेद हैं, पर मोटे तौर पर ऊपर दिया गया विवरण सामान्य जानकारी ठीक ठीक दे देता है।

मुसलिम विद्वानों की यह भी मान्यता है कि जब और जैसी जरूरत पड़ी, उसी के अनुसार कुरान २०-२३ वर्षों की अवधि में उतरा और इस प्रकार टुकड़ों टुकड़ों में उतरा कुरआन हजरत अबू बक्र (पहिले खलीफा) के समय में संग्रहीत हुआ। जिसका विवरण आप ऊपर पढ़ चुके हैं।

(५) कुरान में आयतों के प्रकार और कुरान के विभिन्न पहलुओं में मतभेद

कुरान में कुल कितनी आयतें हैं, इस पर प्रसिद्ध मुसलिम विद्वानों में बड़ा मतभेद है। पं० सत्यदेव ने प्रयास कर इस पर काफी विस्तृत सामग्री दी है। इसे देख कर मालूम होता है कि कुरान में ६६६६ से ६००० आयतें हैं। मोहम्मद याकूब कुलैनी १६००० आयतें मानते हैं। इस प्रकार ७६ हजार छसौ २३ से ७६ हजार २ सौ ७६ कलमात माने जाते हैं। अक्षरों की संख्या ४,२५,४३३ से ३,०२,६०० तक मानी जाती है। सूरः (अध्याय) भी ११२ से ११६ तक माने जाते हैं। (कुरान-परिचय भाग १ पृष्ठ १२० से १२८)

कुरान में निम्न प्रकार की आयतें हैं :-

(१) मक्की - जो आयतें मक्का में उतरीं। मक्का से मदीने जाते समय जो आयतें उतरीं उन्हें भी कुछ विद्वान मक्की मानते हैं।

(२) मदनी - जो आयतें मदीने में उतरीं। मदीने जाते समय जो आयतें उतरीं उन्हें कई विद्वान मदनी कहते हैं।

इस के अलावा कुछ विद्वानों का मत है कि जिन आयतों में मक्का वालों को संबोधित किया गया हो वे मक्की और मदीने वालों को सम्बोधित किया गया हो वे मदनी हैं, चाहे वे कहीं भी उतरीं हों।

(३) हजरी = वे आयतें जो मक्का और मदीने में निवास करते समय उतरीं
(४) सफरी = जो सफर करते समय उतरीं।
(५) निहारी - जो दिन में उतरीं।
(६) लैली - जो रात में उतरीं।
(७) सैफी - जो सर्दी में उतरीं।
(८) शताई = जो गर्मी में उतरीं।
(९) फराशी = जो उस समय उतरीं जब मौहम्मद साहब अपनी किसी पत्नी के साथ लेटे थे और जागृत अवस्था में थे।
(१०) नौमी = जो उस समय उतरीं जब मौहम्मद साहब अपनी किसी पत्नी के साथ लेटे थे पर स्वप्नावस्था, अर्धनिद्रा अथवा निद्रा की अवस्था में थे।
नोट = कई विद्वान मानते हैं कि केवल हजरत आइशा के साथ लेटे होने पर ही आयतें उतरती थीं, अन्य के साथ नहीं।
(११) अर्जी और समावी = जो न पृथ्वी पर उतरी हैं और न आसमान में। उनका कुछ अंश पृथ्वी पर, कुछ आसमान पर और कुछ पृथ्वी के नीचे गुफा में।
इनके अलावा निम्न प्रकार और हैं:-
(१) जिनका पाठ हो सकता है पर अमल नहीं हो सकता।
(२) जिनका पाठ हो सकता है और अमल किया जा सकता है।
(३) जिन्हें समझा जा सकता है, जिनका अर्थ लगाया जा सकता है।
(४) जिनका न तो अर्थ लगाया जा सकता है और न समझा जा सकता है। इन आयतों का अर्थ केवल अल्लाह और रसूल को ज्ञात है। ये मामला उन दोनों के बीच का है। यदि कोई इसे समझने या अर्थ लगाने की कोशिश करता है तो वह काफिर करार दिया जाता है और उसके लिये मृत्यु दण्ड का विधान है।
(५) आयतें जो रद्द या मंसूख या निरस्त हो गई हैं।
(६) आयतें जो अन्य आयतों को रद्द, मंसूख या निरस्त कर रही हैं।

(६) इस्लाम में अल्लाह नहीं है।

जो कुछ मैं कह रहा हूं वह आपको विचित्र लगेगा। मुस्लिम बंधु तो गुस्से में भर जायेंगे। पर इस्लाम का अध्ययन कर जो कुछ मैंने पाया, वह पूर्ण रूपेण सिद्ध करता है कि मौहम्मद साहब के अपने विचार, अपनी महत्वाकांक्षा, समय समय पर लिये गये निर्णय ही अल्लाह के रूप में समाज के सामने रखे गये। इसके प्रमाण में पूरा इस्लामी साहित्य पेश किया जा सकता है। इस स्थान पर इसकी पूर्ण विवेचना करने की आवश्यकता नहीं है।

अगला मुद्दा "कुरान की प्रामाणिकता" है। मैं कुरान को ईश्वरीय पैगाम नहीं मानता। इसके पहिले "इस्लाम में अल्लाह" की स्थिति स्पष्ट करना जरूरी हो गया, अतः उसे स्पष्ट लिख दिया। श्री मोहम्मद फारूख खां ने एक पुस्तक "एक ईश्वर की कल्पना" हिन्दी में लिखी है जो मरकजी मकतबा इस्लामी, नई दिल्ली से प्रकाशित हुई है। श्री खां साहब ने भूमिका में कहा है कि इसमें इस्लामी दृष्टि कोण प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक बहुत अच्छी है तथा उद्धरण दे कर बड़े वैज्ञानिक ढंग पर "एक ईश्वर है" की विवेचना विभिन्न विद्वानों और धर्म ग्रन्थों के अनुभव के आधार पर की गई है। विस्तार से जानने के लिये पाठक उस पुस्तक का अध्ययन और मनन कर लें और फिर उस पुस्तक में ईश्वर के सम्बन्ध में बताये गये गुणों का मिलान कुरानी अल्लाह से करें तो स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जायेगा कि कुरानी अल्लाह, इस पुस्तक (एक ईश्वर की कल्पना) में दिये हुये गुणों से उलटे गुण वाला है। वह एक सीमित व्यक्ति व राग-द्वेष से भरा पक्षपात करने वाला और केवल मुसलमानों का मसीहा है। बाकी बचे मानव समाज का वह घोर शत्रु है। वह न व्यापक है, न सर्वज्ञ है और न सर्वशक्तिमान। कुछ आभास तो आपको अगले मुद्दे के विवेचन में ही मिल जायेगा।

अतः अगले मुद्दे पर विचार रखने के पहिले मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि इस्लाम पूरा का पूरा मोहम्मद साहब के इर्द गिर्द घूमता है। उनकी महत्वाकांक्षा ही अल्लाह है, वास्तविक अल्लाह का अस्तित्व इस्लाम में नहीं है।

(७) <u>कुरान की प्रामाणिकता</u> ?

मुसलमान आज भी एक स्वर से कहते हैं कि कुरान अल्लाह का कलाम है और उसका एक बिन्दु भी इधर उधर नहीं किया जा सकता और न किसी सांसारी व्यक्ति को अधिकार है कि वह उसका अर्थ लगाये या विश्लेषण करे। बहरहाल इस विषय पर कि कुरान इलहामी है और उसमें अब तक कोई परिवर्तन हुआ ही नहीं, इस अध्याय में प्रकाश डाला जायेगा। कुरान इलहामी है या नहीं, इस प्रश्न के पहले ही मैं प्रश्न खड़ा करता हूं कि क्या वर्तमान कुरान प्रमाणित है? मैं स्पष्ट रूप से बतला देना चाहता हूं कि मैं कुरान को इलहामी नहीं मानता। फिर भी लिखने में, मैं बोलचाल तथा चल रही भाषा के अनुसार कुरान का उतरना या अल्लाह का पैगाम आना आदि शब्दों का प्रयोग समझाने की दृष्टि से ही कर रहा हूं।

पहिले बतलाया जा चुका है कि हजरत अबू बक्र के समय में कुरान का संग्रह श्री जैद बिन साबित ने किया। यह संग्रह सफेद पत्थर आदि सामग्रियों तथा जिन्हें याद था उनसे सुन कर किया गया। इस प्रकार जो इबारत या लिखित सामग्री मोहम्मद साहब के पास से आई वही इन साधनों से प्राप्त हुई। इसके बाद १२-१३ वर्ष बाद हजरत उसमान के समय में पुनः कुरान का संकलन

हुआ। इस समय उस कुरान से अन्य अरबी भाषाओं के सभी शब्द हटा कर केवल मक्का की अरबी के शब्द रखे गये और सूरः भी बनाये गये। हदीस से यह भी ज्ञात होता है कि पहले जो कुरान संग्रह किया गया वह अनेक भागों में था और हजरत उसमान ने सुहफ़ें इकट्ठे कर एक मुसहिफ में करदिया। इस प्रकार कुरान में दो परिवर्तन हजरत उसमान के समय में हुये। इसके बाद इसकी नकलें चारों ओर भेजी गई किन्तु मात्रायें आदि न होने के कारण तथा सात प्रकार के पाठों के कारण और विस्तृत भूभाग की भिन्नताओं के कारण अर्थों में मतभेद बना रहा और समस्या का समाधान एक कुरान की नकल अकेले से नहीं हो पाया। अतः मोहम्मद साहब के साथियों ने कुरान में मात्रायें लगाई और विराम निश्चित किये। इसके बाद भी समस्या बनी रही और अन्य विद्वानों ने ठहरने की जगह निश्चित की, पारा और रुकुअ बना दिये तथा प्रत्येक रुकुअ की आयतों पर चिंह लगा दिये।

अब यहां यह देखना है कि पहिली कुरान की प्रति जिसे जैद साहब ने अबूबक्र के समय तय्यार किया था, वह अबू बक्र के बाद उमर और उमर के बाद उनकी लड़की हाफसा (मोहम्मद साहब की विधवा पत्नी) के पास रही। यह ठीक है कि जब हजरत उसमान ने दूसरी बार कुरान तय्यार कराया तब इस पहले कुरान को भी मंगाया गया था और काम हो जाने पर पहिले कुरान की प्रति पुनः हजरत हाफसा को वापस करदी गई थी। पर हजरत उसमान की आज्ञा से इस दूसरे कुरान की नकल के अलावा जो नकलें चारों ओर फैली थीं, उन्हें जला दिया गया था तथा इस पहली कुरान को भी हजरत हाफसा से मांगकर जलाने का प्रयास हुआ था। हजरत हाफसा ने पहले कुरान की प्रति नहीं दी अतः वह उस समय तो बच गया पर बाद में हजरत हाफसा की मृत्यु के बाद कुरान की उस मूल प्रति को भी जला दिया गया।

उपर्युक्त विवरण को देखते हुए मैं मुसलमानों से कहना चाहता हूं कि वर्तमान कुरान प्रामाणिक ही नहीं है। कारणों पर स्वयं विचार करें। हजरत उसमान ने दुबारा कुरान तय्यार किया तो आदेश दिये कि इसकी नकल के अलावा बाकी कुरान जला दिये जायें। इसका कारण था उन कुरानों में मतभेद और मनमाना काम। अतः इस भ्रम पूर्ण साहित्य का नष्ट करना आवश्यक था, पर जो कुरान जैद साहब ने संग्रहीत किया था और हाफसा के पास था, वह तो ऐसा नहीं था। दुबारा कुरान तय्यार करते समय भी उसे मंगाया गया था तथा काम हो जाने पर उसे वापस कर दिया गया था। हम यह भी मान कर चलने को तय्यार हैं कि अन्य भाषाओं के शब्दों की जगह मक्की अरबी के शब्द रख दिये पर और सब तो एक ही रहा। फिर हजरत हाफसा के पास रखे कुरान को अन्य बिखरे हुये कुरआन के समकक्ष मान कर

जलवा देना यह सोचने के लिये मजबूर करता है कि जैसे अन्य फैले हुऐ कुरान उसमान द्वारा तय्यार किये कुरान से भिन्न थे, जैसे ही हजरत हाफसा के पास रखा कुरान भी भिन्न था। अतः उसे भी जलवा दिया गया ताकि उसमान द्वारा तय्यार कुरान से जरा सा भी भिन्न कोई कुरआन रहे ही नहीं। इस पर जरा सा भी गौर करने पर ज्ञात हो जायेगा कि पहला कुरान ही मूल पुस्तक थी और हजरत उसमान द्वारा तय्यार की गई पुस्तक नकल थी। अतः नकल की रक्षा के लिये असल का जला देना स्वतः सिद्ध करता है कि नकल असल से अलग कुछ और थी और नकल करने या कराने वालों की अपनी इच्छानुसार लिखी गई थी।

अब इस तथ्य को एक और पहलू से देखें। कुरान की पहली प्रति जैद साहब ने मूल स्रोत पत्थर, ऊंट की हड्डी, कागज, याददास्त आदि के आधार पर तय्यार की थी। हम कुरआन को ईश्वरीय पैगाम मानें या मोहम्मद साहब का वचन, पर दोनों ही सूरतों में जो कुछ भी मोहम्मद साहब ने कहा, वही उस समय के लोगों ने लिख लिया या याद कर लिया। जैद साहब ने पूरी ईमानदारी और निष्ठा से इन सब वचनों को संग्रह किया था। अतः पहले कुरान का यह संकलन असंदिग्ध रूप से पूर्णतया प्रामाणित है फिर चाहे वह मोहम्मद साहब के वचन हो या ईश्वरीय प्रेरणा से या कि पैगाम। पर वर्तमान कुरान तो हजरत उसमान द्वारा तय्यार कुरआन है और जब मूल कुरआन जलवा दिया गया तब यह जानने का कोई प्रमाण रह ही नहीं जाता कि जो कुछ इसमें लिखा है वह मोहम्मद साहब का कहा हुआ है चाहे वह स्वेच्छा से हो या कि ईश्वरीय प्रेरणा से। हजरत उसमान द्वारा अन्य कुरानों को जला देना यही बतलाता है कि दोनों की आयतों में अन्तर एवं फर्क था। इस विभिन्नता को मिटाने के लिये पहले तय्यार की गई कुरान को जला दिया गया।

अतः पूरी घटनाओं को देखने के बाद मेरा मत बनता है कि दूसरी बार कुरआन का संग्रह हजरत उसमान और उनके प्रियजनों की इच्छानुसार हुआ। सूरतें भी बनीं और शब्द भी बदले गये। अतः यदि मूल कुरान की प्रति जलाई न जाती तो इस दूसरे कुरान की प्रतिष्ठा नहीं हो पाती अथवा यह स्पष्ट हो जाता कि दूसरा कुरआन पहले से भिन्न है। अतः इस समय यदि मैं मुसलमान बंधुओं से पूछूं कि वर्तमान कुरआन में जो इबारत है वह क्या वही है जो मोहम्मद साहब ने कही थी और उस समय के मुसलमानों ने सुना था, तो वे उत्तर नहीं दे सकते क्योंकि कुरान के मूल स्रोत, पत्थर, कागज आदि सब नष्ट हो गये और उनकी इबारत जो जैद सा॰ ने लिख कर सुरक्षित की थी, वह जला दी गई। प्रमाण में शेष कुछ बचा ही नहीं। जैसा कि मैं पहले बतला चुका हूं कि यमामा के युद्ध में मोहम्मद साहब के अधिक साथियों के मारे जाने के कारण हजरत उमर ने हजरत अबू बक्र से कह कर कुरान संग्रह कराया था। उस समय उनके दिमाग में था कि यदि इसी तरह युद्ध होते रहे और

मौहम्मद साहब के साथी मारे गये तो कुरान जो याद है वह जाता रहेगा। पर हजरत उसमान के समय में या उसके बाद पहले वाले कुरान को जलवा कर मुसलमानों ने पूरा कुरान ही खो दिया। अतः वर्तमान कुरआन को प्रामाणिक मानना सम्भव नहीं है।

अब मैं मूल पुस्तक की प्रामाणिकता पर अपने विचार दे रहा हूं। यह मानी हुई बात है कि कुरआन का संकलन हुआ था और जो भी साधन थे जैद को मिले उनके आधार पर उन्होंने ईमानदारी से लिख लिया। पर क्या सफेद पत्थर, ऊंट के चमड़े आदि पर लिखी इबारत २४-२५ वर्षों के लम्बे समय में ज्यों की त्यों रह सकती है? जब हम अरब का जीवन, वहां की जलवायु, मौहम्मद साहब द्वारा साल में १०-१५ सैनिक अभियान देखते हैं तब स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि क्या कोई कबीला, इस प्रकार का जीवन बिताने वाला, इन्हें इतना सुरक्षित रख सकता है कि इतने वर्षों के बाद भी उसके अक्षर मिटें नहीं, विकृत न हों और धुंधले पड़कर पढ़ने में भ्रम न पैदा कर दें। उस समय न तो ऐसी स्याही ही बनी थी जो इस प्रकार स्वतन्त्र परिस्थितियों में खराब या विकृत न हो। सम्भावना यही है कि जो कुछ मिला उसे पढ़ कर तथा कठिनाई आने पर ईमानदारी से जैद साहब ने वाक्यों और इबारत को पूरा किया होगा। अतः मूल कुरान को भी प्रामाणिक मानना संकोच से भरा है।

दूसरा पहलू यह भी है कि जो इबारत पत्थरों आदि पर लिखी गई थी, वह सब क्या योग्य व्यक्तियों द्वारा लिखी गई थी और उसे तुरन्त लिख लिया गया था। शान्ति पूर्वक लिखा गया हो यह सम्भव नहीं है। अतः सुनने के बाद जिसे जो कुछ भी याद रहा, उसे उसने लिखा दिया। यह सम्भव नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति इतना प्रतिभाशाली रहा हो कि एक बार सुन कर इतनी बड़ी सामग्री ज्यों की त्यों याद रख सके और अवसर मिलने पर उसे लिख ले या लिखा दे।

तीसरा पहलू यह भी है कि यद्यपि लिखने वालों ने ईमानदारी से लिखा और याद रखने वालों ने ईमानदारी से बयान किया तदापि आजकल की तरह सामग्री को सुरक्षित रखने का ऐसा प्रबन्ध तो तब था नहीं कि सब पत्थर, आदि दीर्घ काल तक सुरक्षित बने रहें और नहीं इतने लम्बे-चौड़े देश के हजारों आदमियों से यह आशा की जा सकती है कि वे पत्थर आदि को सुरक्षित रख सकें। अतः यह कहना सम्भव ही नहीं है कि पैगाम का कितना हिस्सा नष्ट हो गया और कितना बचा जिसे संकलित किया गया।

चौथा पहलू यह है कि कुरान में ऐसी आयतें हैं जो अनेक आयतों को निरस्त कर देती हैं। यह असम्भव है। विश्व को बनाने वाली और चलाने वाली अदृश्य महाशक्ति, चाहे उसे कोई नाम दिया जाये, सर्वज्ञ है और ज्ञान वान है। वैज्ञानिक मानते हैं कि पृथ्वी की आयु २ अरब ३४ करोड़ वर्ष की है। ब्रह्माण्ड की आयु का आंकलन ही सम्भव नहीं है। इतने लम्बे समय से इस ब्रह्माण्ड को चलाने वाली सत्ता के बनाए हुए नियम और आदेश आज भी

जो आज कुछ कहे और कल उसे बदल दे।
अपरिवर्तित है। यह महासत्ता सनकी नहीं है। यह सब
अतः अल्लाह के पैगामों में किसी आयत का निरस्त होना असम्भव है। जो केवल पढ़ी जानी
काम प्राकृतिक मनुष्य के हैं। इसी प्रकार ऐसी आयतें हैं
चाहिये; उन पर अमल नहीं हो सकता। महासत्ता ऐसे व्यर्थ के नियम नहीं बना
सकती जिन पर अमल नहीं हो सकता। जब अमल ही नहीं होना है तो
पढ़ने से लाभ ही क्या? इस प्रकार कुरआन में "मुतसाबेहात" आयतें हैं, जिनके
बारे में मुसलिम विद्वान कहते हैं कि इनका अर्थ केवल अल्लाह जानता है और
इनको समझने या अर्थ करने वाला काफिर है और उसे मृत्यु दण्ड देना चाहिये।
भला। ब्रह्माण्ड की महासत्ता को इससे क्या लाभ कि वह ऐसे आदेश दे, जिन्हें
वह स्वयं ही समझती हो। इससे संसार का क्या भला होगा? सत्य यह है कि
समय और जरूरत के अनुसार मोहम्मद साहब ने आदेश दे कर काम पूरा
करा लिया, पर वे जानते थे कि इन आदेशों का समझना और समझाना दोनों
ही पैगम्बरी का विनाश कर देंगे अतः उन्होंने व्यवस्था कर दी कि इनका अर्थ
अल्लाह और पैगम्बर से सम्बन्धित है, अतः उन्हें न कोई समझेगा या
समझायेगा और न उसे इन भूलों की जानकारी ही हो सकेगी। मृत्यु दण्ड के
भय से सब का मुंह बंद कर दिया। पर गैर-मुसलमान इन सब बातों का पाबंद
नहीं है। उसने तो उनका अर्थ लगाया ही है। अतः कुरान को प्रामाणिक मानना
सम्भव नहीं है।

पांचवां पहलू यह है कि कुरान में "फरासी और नौजी" कही जाने वाली
आयतें हैं। ये आयतें उस समय उतरीं जब मोहम्मद साहब अपनी किसी पत्नी
के साथ सो रहे थे। ब्रह्माण्ड चलाने वाली सत्ता क्या इतनी नादान और ना समझ,
असभ्य है कि वह अपना ज्ञान देने के लिये ऐसे अवसर को चुनेगी। सिर्फ
पैगम्बरी सिद्ध करने के लिये ऐसी असम्भव कल्पना की गई है तथा उस पवित्र
सत्ता को इतने निम्न स्तर पर उतार कर वास्तव में उस महान ईश्वर का
अपमान किया गया है। कुरान को प्रामाणिक मानना कतई सम्भव नहीं है।

छठवां पहलू यह है कि कुछ मुसलमान विद्वानों की मान्यता है कि जिब्रील
फरिश्ता हर वर्ष मोहम्मद साहब को पूरी कुरान पढ़ाता था। उनके जीवन के
अन्तिम वर्ष में उसने दो बार उन्हें कुरान पढ़ाई और दूसरी बार पूरी कुरान
लिखवा भी दी। यह थोथी मान्यता इसलिये लाई गई है कि अबू बक्र के समय
में कुरान संकलित हुई थी। इस मान्यता से यह सिद्ध करने की कोशिश की गई
है कि कुरान संसार बनने से पहले की है और अल्लाह के हुक्म से जिब्रील ने
मोहम्मद साहब को पढ़ाई और लिखवाई। इस प्रकार यह सिद्ध करने का प्रयास किया
गया है कि कुरान मोहम्मद साहब की वाणी नहीं है वरन अल्लाह की वाणी
है और मोहम्मद साहब अल्लाह के पैगम्बर थे। इस पर भी हम

विचार करें।

यदि इसे सत्य मान लिया जावे तो कुरान मोहम्मद साहब के जीवन काल में ही पूरी हो गई थी। कुरआन उतरने के सम्बन्ध में मैं बतला चुका हूं कि जिब्रील ने लोहे-महफूज से वह पूरा हिस्सा याद कर लिया था जो अल्लाह मोहम्मद साहब को देना चाहता था। फिर वह हिस्सा आसमान के सात से नीचे वाले भाग "बैतुल-इज्जत" में लाकर जमा कर दिया गया तथा आवश्यकतानुसार मोहम्मद साहब के पास पहुंचाया गया। जब जिब्रील को पूरा कुरान याद था और वह उसे हर साल मोहम्मद साहब को पढ़वाता था तथा अन्तिम वर्ष में दो बार पढ़वाया तब फिर मन्सूख और नासिख (निरस्त होने और करने वाली) आयतें कुरान में क्यों हैं? मुतशाबेहात कही जाने वाली आयतें क्यों हैं? क्या ये आयतें दुनिया बनने के पचास हजार साल पहले ही नहीं लिख ली गई थी? अगर ऐसा था तो क्या कारण है कि संसार के बनने के पचास हजार वर्ष पहिले ही कुछ आदेशों को निरस्त करने और ऐसे आदेश देने की, जिसे कोई न समझ सके, अल्लाह को ऐसी क्या आवश्यकता पड़ी थी। जब काम हुआ ही नहीं तब किसी आदेश का निरस्त होना यह एक विचित्र कल्पना है। मोहम्मद साहब कहते हैं कि लोहे महफूज दुनिया बनने के ५० हजार वर्ष पहिले तय्यार की गई थी तथा उस पर पूरा ज्ञान लिख दिया गया था। वैज्ञानिक मानते हैं कि पृथ्वी की आयु १ अरब ३४ करोड़ वर्ष है। इतने विस्तृत और लम्बे समय में ~~अल्लाह~~ अल्लाह और जिब्रील यह न जान पाये कि कौन से आदेश निरस्त हो गये हैं। जब कुरान लिखवाई गई थी तभी इस प्रकार की आयतों को अलग कर देना चाहिये था। पर आज तक कुरआन में वे मौजूद हैं। क्या संसार के चलाने वाली सत्ता सोती रही या नशा पीकर गफलत में पड़ी रही? महासत्ता न तो पागल है और न नींद में ही रहती है। वह सदैव चैतन्य रहती है, वह स्मरण शक्ति से हीन भी नहीं है। वह सर्वज्ञ है। वह इस प्रकार के प्रपंचों में पड़ती ही नहीं और न इस प्रकार की भूल ही करती है। सत्य यही है कि मुसलमानों ने अपनी बुद्धि न लगा कर अन्ध श्रद्धा के कारण पिछले १४०० वर्षों से बे सिर पैर की मनमानी की है। उन्होंने परमसत्ता को अपमानित करने वाली कल्पनायें करली हैं और कुरान तथा हदीस जो मनुष्य से सम्बन्धित हैं, उन्हें ईश्वरीय सिद्ध करने का प्रयास किया है। कुरआन को प्रामाणिक मानना सम्भव नहीं है।

इसे एक पहलू से और देखें। अगर जिब्रील ने कुरान लिखवाई थी तो वह कुरआन है कहां? मुसलमान तो आज भी कुरान पर अत्याधिक श्रद्धा रखता है, अतः मोहम्मद साहब के साथी मोहम्मद साहब के समय में ही उस कुरआन को नष्ट नहीं कर सकते थे। मोहम्मद साहब यदि उस कुरान को किसी के पास रखा देते तो पुनः अबू बक्र के समय में कुरआन का संग्रह क्यों होता। इस प्रकार मूल कुरान का कोई भी प्रमाण नहीं है।

अगर वह कुरान है तो अब भी मुसलमानों को अवसर है कि वे उसे प्रस्तुत करें। वास्तव में कुरान के संग्रह तथा इतने परिवर्तनों को गलत सिद्ध करने के लिये ही ऐसी असम्भव कल्पना का उस सत्य के रूप में प्रचारित कर दिया गया है। कुरान को प्रामाणित मानना असम्भव है।

इस का सातवां पहलू है कि कुरान की आयतों में परस्पर विरोध। यह पुस्तक विरोधों का पिटारा है, यह कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। उदाहरण दिये जावे तो हजारों पृष्ठों का ग्रन्थ तय्यार हो जावेगा। केवल एक उदाहरण दे रहा हूं :-

कुरान पारा १ रुकूअ ६।६ " डरो उस दिन से, न सहायता करेगा किसी व्यक्ति की कोई व्यक्ति और न किसी की शिफारस स्वीकार की जावेगी और न किसी से कोई अन्य वस्तु बदले में ली जावेगी और न किसी प्रकार की सहायता दी जावेगी"।

(सन्दर्भ - कुरान परिचय पृष्ठ ५२८ भाग १)

कुरान पारा १५ रुकूअ २।२ : " और न कोई किसी दूसरे का अपराध उठायेगा। वलीद मगीरा काफिरों से कहता था कि तुम मेरा अनुसरण करो, मैं तुम्हारे पापों का बोझ उठा लूंगा। तो खुदा कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपना ही बोझ उठायेगा न कि किसी दूसरे का" (सन्दर्भ - जो ऊपर है)

अब आगे की आयत देखिये। इसके अलावा पाठक हदीसें देखें तो पता चलेगा कि मोहम्मद साहब की शिफारिस ही व्यक्ति को स्वर्ग दिला सकती है। इसीलिये मैं बार बार कहता हूं कि इस्लाम का अध्ययन गहराई से करना चाहिये। यह एक गोपनीय विचार धारा है, ऊपर से कुछ और भीतर से कुछ और।

कुरान पारा २० रुकूअ १।१३ : " कयामत के दिन अवश्यमेव उठायेंगे अपने अपराधों का भारी बोझ, दूसरे के अपराधों के बोझ के साथ अर्थात अपने अपराधों के भारी बोझ के साथ, जिन लोगों को उन काफिरों ने पथ भ्रष्ट किया है, उनके बोझ को उन काफिरों के अपराधों के बोझ पर अधिक कर देंगे बिना इस बात के कि पथ भ्रष्ट लोगों के अपराधों के बोझ में कोई कमी हो।

(सन्दर्भ - जो ऊपर है।)

ईश्वर का काम पूर्ण वैज्ञानिक, सम्यक और व्यवस्थित है। अगर उसके आदेशों या नियमों, या निर्णयों में विरोध होता तो जैसे अभी जनवरी १९८६ में अमरीकी चैलेंजर यान छोड़े जाने के बाद १२ सि. में ही फट कर नष्ट हो गया, उसी तरह यह पृथ्वी भी बनने के १२ मिनट बाद फट कर नष्ट हो गई होती। ऐसी अवस्था में न मक्का, मदीना होते, न मोहम्मद साहब होते और न कुरान तथा इस्लाम। अतः ये पैगाम ईश्वर के नहीं हो सकते, मानव कृत हैं। कुरान को प्रामाणित मानना सम्भव नहीं है।

इसका आठवां पहलू है, कुरान में कहानियों की भरमार और उनकी पुनरावृत्ति। इनमें भी परस्पर विरोधाभास है। जो भी कहानियां मोहम्मद साहब ने अरब में सुनी, उन्हीं को उन्होंने अपने ढंग से, समयानुसार अपनी

कार्य सिद्ध के लिये सुना दिया। उनके समय में ही, उनके मुंह पर, कहने वालों की कमी नहीं थी। मक्का के लोग पढ़े लिखे थे और साफ साफ कहते थे कि मोहम्मद अरब की बूढ़ी स्त्रियों की कहानियां सीख सीख कर लोगों को सुनाता है। एक व्यक्ति तो मोहम्मद साहब की नाक में दम किये था। जहां भी मोहम्मद साहब कहानी सुनाते, वहीं वह भी कहानी सुनाता और लोगों से पूछता कि कहो किसकी कहानी अच्छी है? सत्य यही है कि यहूदी और ईसाई पौराणिक ग्रन्थों से कहानियां समाज में प्रचलित हुई और इन्हीं कहानियों को मोहम्मद साहब ने लोगों को सुनाया। डा० टिसडेल ने अपनी अंग्रेजी पुस्तक "सोर्सेज आफ कुरआन" में लगभग ३०० पृष्ठों में इस विषय को सटीक और सप्रमाण प्रस्तुत किया है। सामान्य रूप से पैगम्बर, किताब, फरिश्ता, दोजख, जन्नत, लौहे-महफूज, तथा अन्य अनेक मान्यतायें यहूदी तथा ईसाइयत की हैं। अतः प्रचलित कहानियाँ जिन्हें अरब की माताएं भी सुना रही थीं, जिस पुस्तक में हों वह अल्लाह की नहीं, मानव कृत ही हो सकती है। मोहम्मद साहब पढ़े नहीं थे, यह ईश्वरीय पैगाम का आधार नहीं माना जा सकता। अतः कुरान को प्रमाणित मानना सम्भव नहीं है।

आठवां पहलू यह है कि कुरआन के बारे में कहा गया है कि यह पुस्तक अपने से पहिले की सभी पुस्तकों को रद्द करने (निरस्त) वाली है, पर स्वयं कभी निरस्त होने वाली नहीं है। अर्थात कुरान के पहिले की सभी पुस्तकें व्यर्थ हो गई, केवल कुरान ही प्रामाणिक, स्वयंसिद्ध और वैधानिक पुस्तक रह गई। ईश्वर के दरबार में कुरान ही मान्य होगी। इसका यह भी अर्थ हुआ कि पूर्व पुस्तकों में जो कुछ भी लिखा है वह यदि कुरान से सिद्ध नहीं होता या कुरान के अनुसार नहीं है, तो वह झूठ है। यह कल्पना विचित्र है और साथ ही सत्य की परिभाषा भी। कम्युनिष्टों ने भी ऐसी परिभाषा तय्यार कर रखी है। वे कहते हैं कि पूंजीवाद क्रिया के विरोध में समाज वाद की प्रतिक्रिया होगी। फिर समाजवादी प्रक्रिया के विरोध में साम्यवाद की प्रतिक्रिया होगी। इस प्रकार समाज वाद प्रतिक्रिया ~~बन रहेगा~~ बनेगा और बाद में साम्यवाद की प्रतिक्रिया घटित होगी। बस साम्यवाद की क्रिया का विरोध नहीं होगा और फिर कोई परिवर्तन होने की आवश्यकता नहीं रहेगी। कुरान कहती है कि वह सभी पहले की पुस्तकों को रद्द कर देगी पर स्वयं रद्द नहीं होगी। प्रकृति का नियम है कि जो भी क्रिया या प्रतिक्रिया प्राकृतिक नियमों के आधीन होती है वह निरन्तर चलती रहती है। अतः अगर पहिले की की पुस्तकें रद्द हो सकती हैं तो कुरान भी रद्द हो सकती है। पर मोहम्मद साहब को अपनी वर्चस्वता सदैव के लिये बनाये रखने के लिये दूसरों को किसी प्रकार का काम न करने देने के लिये दैवी विधान के विरुद्ध ऐसी घोषणा करनी पड़ी। यदि वह ईश्वर का कलाम होता तो जो नियम आदि काल से बने हैं, वह मोहम्मद साहब के जीवन काल में कभी बदले ना जाते। यदि नियम बदला ही गया है तो उसे आज भी बदला हुआ होना चाहिये और मोहम्मद साहब

के समय की तथा आज की ब्रह्माण्ड चलने की गति में अन्तर आ जाना चाहिये था। पर ऐसा नहीं है। प्रकृति के सिद्धान्त वही हैं जो मोहम्मद साहब के जन्म के पहिले और उनके जीवन में थे। उपनिषद का स्पष्ट कथन है कि संसार के सभी पदार्थ इन २ तीन अवस्थाओं से गुजरते हैं,- गति, शैथिल्य और विनाश। अतः यदि कुरान के पूर्ववर्ती पुस्तकों को इन अवस्थाओं से गुजरना पड़ा था तो कुरान को भी गुजरना पड़ेगा। संस्कृत में इस संसार को "जगति" कहा है, जिसका अर्थ होता है "गति से जन्म लेने वाला या जन्म से गति रखने वाला"। जब संसार का प्रत्येक कण गतिवान है तो उसमें घिसन होगी। और वह नष्ट भी होगा। विज्ञान स्पष्ट घोषणा करता है कि जहां गति है वहां घिसन अनिवार्य है और जहां घिसन है वहां गति अनिवार्य है। समझ में नहीं आता कि विश्व के सभी वैज्ञानिकों, विचारकों और दार्शनिकों के अनुभव को नकार कर मुसलमान क्यों कुरान की विचित्र कल्पनाओं से चिपका है। और उन्हें अपना आधार मान कर सभी गैर-इस्लामी विश्व पर बलात इस्लाम लादने पर तुला है। कुरान को प्रामाणिक मानना सम्भव नहीं है।

नवां पहलू यह है कि ईश्वर प्रेममय है। कुरान अत्यधिक नफरत फैलाने का माध्यम है। यदि नफरत भरी आयतें छांटी जायें और उनका विवेचन किया जाये तो अलग एक बड़ा ग्रन्थ तय्यार हो जायेगा। व्यावहारिक रूप में भी यह ऐतिहासिक सत्य है कि पिछले १४०० वर्षों में प्रत्येक देश में मुसलमानों ने विनाश ही किया है और गैर-इस्लामी देशों में जहां भी वे कुछ प्रभावशाली संख्या में हो जाते हैं या हैं, वहां वे न चैन लेते हैं और न लेने देते हैं। वर्तमान समय में भारत, फिलिपीन, साइप्रस और लीबिया इस तथ्य के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। हर देश में उनकी एक ही मांग है "अलग इस्लामी राज्य - हुकूमते इलाही-" अन्यथा दंगा, हमला, आतंक और विनाश। अतः इस पृष्ठभूमि पर कुरान को ईश्वरीय ग्रन्थ मानना सम्भव नहीं है।

दसवां पहलू है "मोहम्मद साहब को ज्ञान मिलने का तरीका"। पहिले पहल जब मोहम्मद साहब हरा की खोह में थे तब एकाएक एक फरिश्ता आया और उसने मोहम्मद साहब को दबोच लिया और कहा पढ़। बहरहाल मोहम्मद साहब घबरा गये और सम्हलने पर घर आये और अपनी पत्नी को हाल बतलाया। काफी देर तक बिस्तर पर ओढ़ कर पड़े रहे। बाद में उनकी पत्नी उन्हें अपने चचेरे भाई वरका बिन नौफल के पास ले गई जो ईसाई हो गये थे और ईसाई धर्म ग्रन्थ पढ़ा करते थे। वरका बिन नौफल ने कहा कि वह फरिश्ता जिब्रील था जो हजरत मूसा के पास आया था और अल्लाह तुम्हें नबी बनाना चाहता है। इस कहानी को अधिक न लिख कर मैं अपने मुद्दे पर ही कहना चाहता हूं कि इसके बाद भी सारी उम्र जब भी वही आती थी तो शरीर कांपता था, दांत भिंच जाते थे, बेहोशी हो जाती थी तथा अन्य प्रकार से

कष्ट होता था। कहने का तात्पर्य यह है कि अपना ज्ञान देने के लिये अल्लाह ने ऐसा तरीका क्यों अपनाया जब कि इसके पहले और इसके बाद कभी ऐसे तरीके से ईश्वरीय ज्ञान किसी भी व्यक्ति को नहीं मिला। विचार करने की बात है कि जो ईश्वर प्रेममय है, जिसे दुखों का हरने वाला कहते हैं, जो समझदार और सब का पालन कर्ता है, वह ईश्वर अपना ज्ञान देने के लिये इतनी तकलीफ क्यों देगा? फिर एक प्रश्न और है कि सिर्फ मोहम्मद साहब के लिये ही "लौहे-महफूज, फरिश्ते, वही और लौह-महफूज से ज्ञान इकट्ठा कर "बैतुल-इज्जल" में लाने और मोहम्मद साहब के उठने, बैठने, बातें आदि करने जैसे दैनिक कार्यों में पैगाम देने का तरीका अल्लाह ने क्यों अपनाया? और यह पूरी व्यवस्था करने की जरूरत केवल मोहम्मद साहब के लिये ही क्यों समझी। विशेष ऊहापोह किये बिना निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है कि यह सब प्रपंच का ताना बाना अपनी पैगम्बरी का सिक्का जमाने के लिये बुना गया। इस प्रकार हर ताने बाने के साथ एक नये चमत्कार की प्रक्रिया जुड़ती चली गई। आज तक मुसलमान कुरान को ईश्वरीय पुस्तक और मोहम्मद साहब को पैगम्बर बनाये रखने के लिये इस ताने बाने के इर्द गिर्द नये नये स्पष्टीकरण जोड़ते जाते हैं। मेरी मान्यता है कि मोहम्मद साहब ने तलवार के जोर से पैगम्बरी गले के नीचे उतारने के अपने काम को ठीक सिद्ध करने के लिये शायद अपने ऊपर आने वाले पैगामों की इस पद्धति का प्रचार किया था। मुसलमान आज भी इसी को आदर्श मान कर गैर-मुसलमानों के गले के नीचे अपनी कुरान, हदीस और शरीअत बलात उतारना अपना फर्ज समझते हैं। घटनाओं के इस परिप्रेक्ष्य में कुरान की प्रामाणिकता मानना कतई सम्भव नहीं है।

ग्यारहवां पहलू है अल्लाह का रात दिन छोटी छोटी बातों में पैगाम भेजना और मोहम्मद साहब की सेवा में स्वामिभक्त नौकर की तरह खड़े रहना। मोहम्मद साहब की जरा जरा सी दैनिक समस्याओं का समाधान अल्लाह करता है। समस्त ब्रह्माण्ड का संचालक, एक एक व्यक्ति की निजी और छोटी छोटी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये इतने निम्न स्तर पर कभी नहीं आयेगा। इसके साथ यह भी सत्य है कि अगर ईश्वर ऐसा कर सकता है, तो मोहम्मद साहब की मृत्यु के बाद सभी संसार के लिये न सही तो कम से कम अपने प्रिय और श्रेष्ठ दीन इस्लाम और अपने सब से श्रेष्ठ और प्रिय पैगम्बर मोहम्मद साहब के ~~लिये~~ दामाद नाती आदि के लिये तो कुछ न कुछ करना ही चाहिये था। पर यह न तब हुआ और न आज तक किसी मुसलमान को या मुस्लिम देश में कोई पैगाम आया। बात स्पष्ट यह है कि दिन प्रतिदिन की छोटी छोटी आवश्यकताओं में मोहम्मद साहब को निर्णय लेने पड़े। वे निर्णय उन्होंने अपने नाम से न कहकर अल्लाह की ओर से घोषित किये। इस प्रकार ईश्वरीय भय से सब का मुंह बंद कर उन्होंने अपने शब्दों को

है कानून सिद्ध कर दिया। इतना ही नहीं वरन अपने समान दूसरा कोई होवे ही नहीं और न दूसरे उनके काम तथा सिद्धान्तों की समीक्षा कर सकें या उन्हें गलत सिद्ध कर सकें, इस महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये उन्होंने घोषणा कर दी कि अब आगे पैगम्बर होंगे ही नहीं और न भविष्य में पैगाम ही आवेंगे। कुरान में "मुतसाबेहात" आयतें इसी तथ्य का प्रमाण हैं। न रहेगी बांस और न बजेगी बांसुरी। इस विषय पर अनेक उदाहरण कुरान और उसकी विभिन्न टीकाओं में आसानी से मिल जायेंगे। बहर हाल कुरान को प्रमाणित मानना सम्भव नहीं है।

बारहवां पहलू है, कुरान उतरने के खास मुद्दे। आचार्य देव प्रकाश ने विभिन्न मान्य मुसलिम विद्वानों के साहित्य का अध्ययन कर और उससे छांट कर कुरान परिचय भाग १ पृष्ठ ५६-५८ पर जो लिखा है उसे मैं पाठकों की जानकारी हेतु ज्यों का त्यों नीचे दे रहा हूं:-

(१) जिब्रील कुरआन के शब्द और अर्थ दोनों ही कहता था।

(२) जिब्रील केवल अर्थों को ही बयान करता था।

(३) जिब्रील कहता नहीं था, मन में अंकित करता था।

(४) जिब्रील ने कुरआन को लौह-महफूज से कंठस्थ करने के पश्चात उतारा।

(५) लौहे-महफूज में कुरान के अक्षर कोहेकाफ पहाड़ के बराबर थे।

(६) उनके नीचे अनगिनित अर्थ लिखे हैं।

(७) जिब्रील विशेषकर अर्थ ही उतारते थे और हजरत मोहम्मद उनको जानकर उन्हें अरबी भाषा में बयान करते थे।

(८) रसूलल्लाह पर अर्थों को ही अंकित किया। हजरत मोहम्मद ने उन्हें अरबी भाषा में कर के कहा।

(९) आसमान-निवासी कुरआन को अरबी भाषा में पढ़ते थे। जिब्रील भी उसी प्रकार लेकर आये।

(१०) जिब्रील ने खुदा से कुरआन सीखा।

(११) जिस समय खुदा वही से कलाम करता है, उस समय आसमान निवासी भयभीत हो कम्पित हो जाते हैं।

(१२) आसमान निवासी उस कलाम को सुनते हैं तो चीख कर गिर जाते हैं।

(१३) जिब्रील सजदे से पूर्व अपना सर उठाता है।

(१४) उस समय खुदा अपनी वही के साथ कलाम करता है और जिब्रील उसे फरिश्तों तक ले जाता है।

(१५) फिर खुदा की आज्ञा से यथा स्थान पहुंचा देता है।

(१६) जब जिब्रील ने कुरआन कंठस्थ कर लिया तब खुदा के कलाम के भय से आसमान निवासी मूर्छित हो गये।

(१७) फिर जिब्रील कुरआन को बैतुल-इज्जत ले आये और फरिश्तों को बोल कर लिखवाया।

(१८) खुदा ने जब जो जिब्रील से, उसने वह हजरत मोहम्मद को कह दिया। किन्तु जिब्रील की भाषा ज्यों की त्यों खुदा की भाषा न थी।

(१९) खुदा ने हजरत मोहम्मद को सुविधा देने हेतु वही (फरिश्ते) को दो भागों में विभक्त कर दिया। एक तो वह जिसे उन्हीं शब्दों और वाक्यों सहित बयान किया गया और दोयम वह जिनमें सारांश बताया गया। यदि समस्त वही ज्यों की त्यों बयान कर दे तो यह बात उम्मत पर भार होती।

(२०) जौहरी ने कहा कि वही वह कलाम है जो खुदा किसी नबी की ओर भेजता है और वह उसके दिल में अंकित कर देता है। इत्यादि"

कृपया इसे १०वें पहलू (पहले दिया जा चुका है) के क्रम में भी पढ़ें। ये सब विचित्र और समझ में न आने वाला गोरख धन्धा है। मुसलमानों का दावा कि कुरान ईश्वरीय पैगाम है, एक एक लफज अल्लाह का कहा हुआ है, कितना भ्रम पूर्ण और असत्य है, यह आप मुसलिम विद्वानों की जबानी ही जान ~~लीजि~~ लीजिये। पहिले भी मैंने बतलाया है और पुनः बतला रहा हूं कि यह कल्पनातीत, परियों की कथाओं को मात करने वाली व्यवस्था केवल मोहम्मद साहब के लिये ही क्यों बनी? या तो अल्लाह उस समय नशे में रहा होगा या कुछ भी न होते हुऐ मुसलिम विद्वानों ने अपने अहं और अंधश्रद्धा के नशे में जो चाहा वह लिख दिया। बहरहाल कुरान को प्रामाणिक मानना सम्भव नहीं है।

तेरहवां पहलू है कुरान में अर्जी और समावी आयतों का होना। ये आयतें ऐसी हैं जो न जमीन पर उतरीं और न आसमान में। कुछ कहीं और कुछ कहीं। यह कल्पना अच्छी है और मुसलिम समाज की बुद्धि और मस्तिष्क को गिरवी रखे रहने का सफल और श्रेष्ठ साधन है। बात न तो किसी भी हालत में समझी जा सकती और न मानी ही जा सकती है। फलतः कुरान को ~~प्रामा~~ प्रामाणीक मानना सम्भव नहीं है।

चौदहवां पहलू है कि आजतक मुसलमान निश्चय नहीं कर पाये कि कुरान की प्रथम और अन्तिम आयतें कौन सी हैं। इस मुद्दे पर भारी मतभेद है। समझ में नहीं आता कि जब सम्पूर्ण कुरान "लौहे-महफूज" में लिखी है और अभी तक वैसी ही होगी तथा जितनी कुरान अल्लाह मोहम्मद साहब को देना चाहता था, वह "बैतुल-इज्जत" पर ले आई गई थी, कुरआन को जिब्रील आसमानी वासिन्दों को पढ़ाता था, वह हर साल पूरी कुरान मोहम्मद साहब को पढ़ाता था, तब इतनी सुपरिचित कुरआन का प्रारम्भ क्या है और अन्त क्या है, यह भी नहीं मालूम हो सका। 'लौहे-महफूज' की रक्षा तो स्वयं अल्लाह करता है। एक मुसलिम विद्वान तो यहां तक कहते हैं कि अल्लाह प्रतिदिन ३६० बार "लौहे-महफूज" को देखता है। मोहम्मद साहब ने ज्ञान पाया पर वे भी यह न बतला के गये कि कौन सी आयतें पहली और कौन सी अन्तिम

हैं। अल्लाह ने भी जरूरत नहीं समझी और आज भी नहीं समझता है कि उसका ज्ञान करा दे जबकि दैनिक जीवन की छोटी छोटी नगण्य घटनाओं पर तुरन्त पैगाम भेजता रहा। यह एक विचित्र पहेली है जो मुसलिम विद्वान अभी तक नहीं सुलझा पाये, पर यह पहेली कुरआन और उसके उतरने की मान्यता को असत्य सिद्ध कर देती है।

पन्द्रहवां पहलू है, सात हरूफ और सात करात से कुरान पढ़ने की शैली। इस व्यवस्था ने भी इस्लामी जगत में तहलका मचा दिया था तथा प्रारम्भ से ही इस्लाम में फिरके पैदा होने लगे थे। एक मुसलिम विद्वान ने इस्लाम में ७३ फिरकों की सूची प्रकाशित कर दी है। सूची पुरानी है, अब तो और भी नये जुड़ गये होंगे। जब कुरान "लौहे-महफूज" में लिखी है और जिब्रील की जबानी याद है तथा वह मोहम्मद साहब और आसपास के बाशिन्दों को पढ़ाता था तब क्या मान लिया जाये कि "लौहे-महफूज" में भी आयतें पढ़ने के सात करातों की व्यवस्था थी और उसने मोहम्मद साहब को भी आयतें पढ़ने के सात करातों में कुरान पढ़वाया था। आश्चर्य जनक विचार है। सत्य यह है कि मोहम्मद साहब ने अनेक कबीलों के बीच में जीवन बिताया और काम किया। अतः विभिन्न बोलियों में बातें हुई तथा आदेश हुऐ (अल्लाह के नाम से ही सही)। अतः प्रत्येक क्षेत्रीय बोली बोलने वालों का लहजा या शैली अपनी अपनी रही जो स्वाभाविक है। आज भी आप देखें जबकि विराम, प्रश्न वाचक चिह्न आदि "पन्च्यूएशन" की व्यवस्था लगभग पूरी हो गई है तब भी अंग्रेजी बोलने की शैली विभिन्न प्रान्तों में अलग अलग है हालांकि 'पन्च्यूएशन' के कारण अर्थ नहीं बदलता। उस समय की अरबी भाषा में इस प्रकार की व्यवस्था नहीं थी तब कुरान के अर्थों का क्या हाल हुआ होगा। आप स्वयं विचार कर लें। कुरान कैसे संकलित हुई अध्याय में कुछ तथ्य दिये हैं। यह सब सांसारिक पुस्तकों में सम्भव है पर जिस रूप में कुरान का बनना और उसका उतरना इस्लाम ने माना है, उस प्रकार की ईश्वरीय पुस्तक में, इस प्रकार की अनियमितताएं सम्भव नहीं। अतः कुरान को प्रामाणिक मानना सम्भव नहीं है।

सोलहवां पहलू है कुरान में विचित्र प्रकार की आयतों का होना। कुरआन ही इस संसार में ऐसी पुस्तक है जिसमें अपने आप में परस्पर विरोध है, जो स्वतः अपने आदेश निरस्त करती है, जो स्वतः अपने आदेशों के पालन को मना करती है और जो स्वतः अपने में लिखित आयतों का अर्थ लगाने, समझने, समझाने को मना करती है तथा ऐसे व्यक्ति को काफिर कहकर मृत्यु दण्ड दिलाती है। जो आयतें रद्द हो गई वे मरी हुई हैं, तब फिर उन्हें कुरान में क्यों रखा गया है, जिन पर अमल नहीं करना वे लकवा लगी जैसी है, उन्हें क्यों व्यर्थ में कुरान में रखा है, जिनका अर्थ लगाना ही नहीं वे शरीर पर बढ़े हुऐ अंग की तरह हैं। इस प्रकार कुरान की बोझिल

बनाने का कोई सुफल नहीं है। कुरान में दो आयतें ऐसी हैं जिनमें एक कहती है कि पूर्ण कुरआन "मुह्कम" अर्थात समझने योग्य और दूसरी कहती है कि वह "मुतसाबेहात" अर्थात न समझने योग्य है। इनका अर्थ केवल अल्लाह जानता है। अतः वर्तमान कुरान में निहित आयतों के बारे में कुछ भी कहना सत्य के परे होगा। ऐसी पुस्तक तो सांसारिक दृष्टि से भी अधिक उपयोगी नहीं होगी। फिर किस व्यक्ति को प्राण गंवाने हैं जो ऐसी पुस्तक को पढ़े और श्रम करे। अतः कुरान तो पूर्णतया अप्रमाणित सिद्ध होती है। इसे ईश्वर का पैगाम कहकर या उसे छू नहीं सकते, ऐसा कहकर मुसलमानों ने जो आतंक का वातावरण बनाया है, उसे मिटा देना ही भारत देश के हित में होगा।

उपसंहार

इस्लाम की हर चीज गोरखधंधा है, एक पहेली है, चक्रव्यूह है, एक भूल-भुलइय्या है। जितना गहरे जाने की कोशिश होगी, हम उतने ही गहरे उलझते जायेंगे। इस्लाम केवल अहं और महत्वाकांक्षा की पूर्ति का राजनैतिक प्रयास मात्र था और आज भी है। जैसे राजनीति कभी स्थिर नहीं रहती और न उसका विवेचन ही किसी स्थिर सिद्धान्त के आधार पर किया जा सकता उसी तरह इस्लाम का सम्पूर्ण ताना बाना स्वकेन्द्रितता और गैर-इस्लाम मुल्कों को पूर्ण रूपेण समाप्त कर इस्लामी साम्राज्य स्थापित करने का है, उसका कोई भी पहलू स्थिर नहीं है और न उसका विवेचन ही किसी एक सिद्धान्त के आधार पर ही किया जा सकता है।

अतः प्रत्येक हिन्दू और कांग्रेसी सरकार को समझ लेना चाहिये, प्रत्येक राजनैतिक दल को भी समझ लेना चाहिये कि मुसलमानों को कुरान, हदीस, शरिअत, इस्लाम, मजहब आदि की आड़ में किसी भी प्रकार की मांग रखने का अधिकार नहीं है। शरिअत, कुरान और हदीस विदेशी संविधान और विचार-धाराएँ हैं। उन्हें भारत पर नहीं लादा जा सकता। यदि उन्हें भारत में रहना है तो वे भारतीय संविधान के अन्तर्गत रहें और अपनी मांगें रखें अन्यथा वे पाकिस्तान चले जावें। सन १९४७ में "मुसलिम होम लेण्ड" मुसलमानों को इसी काम के लिये दे दिया गया है और वहां कुरआन, शरिअत, हदीस लागू है। हिन्दू ने आज तक इस पर आपत्ति नहीं की। इस लघु पुस्तिका का एक यही ध्येय है कि १४०० वर्षों से कुरआन और इस्लाम के बारे में जो भ्रम पैदा किया गया है, उस भ्रम को दूर कर इस्लाम के प्रत्येक पहलू की वास्तविकता को सामने रखा जावे। सत्यान्वेषी सज्जनों को अब भी चेत जाना चाहिये।

अर्जी मेरी, मर्जी कांग्रेस, कांग्रेस सरकार, विभिन्न राजनैतिक दल तथा हिन्दू समाज की।

ओम शान्तिः शान्तिः शान्तिः

भगवत्नारायण भार्गव
५/१३५ आर्यनगर
कानपुर

चैत्र शुक्ल १४ संवत २०४४

॥ ओ३म् ॥

७।३४ आर्य नगर
कानपुर - २०८००२

आदरणीय बन्धुवर

सादर वंदे

वर्तमान समय में मुसलमान शरिअत तथा कुरान के आधार पर अनेक मांग रख कर देश के वातावरण को विषाक्त बना रहा है। सामान्य हिन्दू को शरिअत से परिचित कराने के प्रयास में, मैंने "इस्लामी शरिअत बुद्धि के आइने में" लघु पुस्तिका लिखी है जिसे अनेक कठिनाइयों के रहते हुए साइक्लोस्टाइल कर कुछ विद्वानों को अध्ययन तथा सुझाव के लिये और उनको आशा लगाये हुए भेजने की योजना है। आपको सेवा में एक प्रति भेज रहा हूं।

हाथ. से ही स्टेन्सिल काटा है तथा मशीन भी पुरानी है, तथा अच्छी नहीं है, अतः श्रेष्ठ और सुन्दर छापा नहीं है। आप से प्रार्थना है कि आप इस लघु पुस्तिका के शरीर पर नहीं वरन आत्मा पर ध्यान देंगे और पढ़ने में जो भी कठिनाई है उसे राष्ट्र हित . . की भावना से किये गये श्रम का मान करते हुए सहर्ष सहन करने की कृपा करेंगे।

इस के बाद कुरान पर इसी प्रकार की लघु पुस्तिका आप के अध्ययन हेतु दूंगा। आशा है कि वह वर्तमान पुस्तिका से अधिक साफ और सुन्दर होगी।

प्रत्येक हिन्दू को इस्लाम का विषद और गहरा अध्ययन करना आवश्यक है। इस प्रेरणा को देने का यह लघु प्रयास है। यदि आप प्रेरणा लेकर इस्लाम का गहरा अध्ययन करने की ओर अग्रेसर होते हैं तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूंगा।

ईश्वर से प्रार्थना है कि वह अपनी कृपा बनाये रखे ताकि हिन्दू राष्ट्र अपने कर्तव्य को सुचारू रूप से पूरा करता हुआ प्रगति करता रहे।

शरिअत मनुष्य कृत है और उसमें परिवर्तन होते रहे तथा आज हो रहे हैं। दैनिक जागरण दि. १२-४-८७ (झांसी संस्करण) में एक समाचार इसी सम्बन्ध में छपा है जो शरिअत में होने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट करता है तथा इन कठ मुल्लाओं तथा कांग्रेसी सरकारों के गलत कामों की पोल खोल देता है। उसकी नकल यहां दे रहा हूं।

॥ हिन्दू राष्ट्र अमर रहे- भारत माता की जय ॥

आपका
भगवत नारायण भार्गव

सेवा में
श्री - - - - - - -
- - - - - - -

दैनिक जागरण के समाचार की प्रतिलिपि

"अलीगढ़ ११ अप्रेल (वार्ता) - अधिकतर मुस्लिम देशों में पत्नियों को तीन बार तलाक कह कर तलाक देने की प्रथा समाप्त हो गई है किन्तु जम्मू कश्मीर में यह

दूसरी ओर भी →

चिन्ताजनक रूप में बढ़ रही है। कश्मीर विश्व विद्यालय के एक प्रोफैसर का कहना है कि राज्य के अधिकतर पुरुष इसी ढंग से अपनी पत्नियों को तलाक देते हैं यद्यपि यह तलाक का सब से मनमाना और क्रूर ढंग है। डा: मिराजुद्दीन ने "इस्लामी समाज के समक्ष चुनौतियां" विषय पर आयोजित राष्ट्रीय परिसंवाद में कहा कि कुछ मामलों में तो स्त्रियों तथा बच्चों को पति की ओर से कोई गुजारा भत्ता नहीं दिया जाता और उन्हें उनके भाग्य पर छोड़ दिया जाता है।

श्री मिराजुद्दीन ने कहा कि एक अच्छी बात यह कि जम्मू कश्मीर के मुसलमानों का बकरवाहा समुदाय इस प्रकार के तलाक को मान्यता नहीं देता। उन्होंने विभिन्न मुस्लिम देशों में तलाक की स्थिति का विवरण देते हुए कहा कि मिस्र ने जिस प्रथा को समाप्त कर दिया है जबकि सीरिया में काजी पति को निर्देश देता है कि वह पत्नी को एक वर्ष तक गुजारा भत्ता दे। जार्डन में तलाक का अधिकार पत्नी को है जो पति को दूसरी शादी न करने का निर्देश दे सकती है। ईरान में दो - पत्नी वाले पति को एक वर्ष की सजा और जुर्माना हो सकता है। ट्यूनीशिया में अदालत के बाहर तलाक गैर कानूनी है। अलजीरिया में इसी प्रकार का कानून है। पाकिस्तान में तलाक के लिये अदालती कारवाई जरूरी है और इन्डोनेशिया में अदालत के बाहर तलाक को मान्यता नहीं है।

श्री मिराजुद्दीन ने कहा कि मुस्लिम विवाह का पंजीकरण अनिवार्य कर दिया जाना चाहिये और अदालत के बाहर तलाक में कमी कर इसे समाप्त किया जाना चाहिये। उन्होंने कहा कि व्यक्तिगत कानून के बारे में गलत फहमी दूर करने के लिये लोगों को शिक्षित किया जाना चाहिये। योजना आयोग के भूतपूर्व सदस्य एन. एम खुसरो तथा शिया उलेमा आगा मुसावी ने कहा कि मुसलिम व्यक्तिगत कानून को मुसलिम समाज की आज की जरूरतों के अनुरुप बनाया जाना चाहिये"।

इस्लामी शरिअत बुद्धि के आयने में

प्रारम्भ

सन् १९८५ में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गये शाहबानों के मामले के नाम से प्रसिद्ध फैसले के बाद भारत के कट्टर-पंथी मुसलिम नेताओं और धर्माचार्यों ने अपनी निरंकुश सत्ता बनाए रखने के लिये इस फैसले के विरुद्ध जबर्दस्त आन्दोलन छेड़ दिया है। अनेक प्रकार की संस्थाएं बना कर तथा न्यायालय की आलोचना कर अब तक वे अपना गुस्सा उतार रहे हैं। जिहाद करने तथा खून बहाने की बात करना तो मुस्लिम नेताओं का स्वाभाविक गुण है। इस्लाम के प्रारम्भिक काल में आतंकवाद के आधार पर सफलता मिलने के कारण वह आतंकवादी पद्धति उनके द्वारा आज तक अपनाई जा रही है। अतः "खून बहना और बहाना" का नारा मुसलमानों के लिये स्वाभाविक बन गया है। उनका सबसे बड़ा आरोप है शरिअत में दखल दिया जाना। इस सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने लेख लिखे हैं और विभिन्न पहलुओं से शरिअत के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं। किन्तु भारत में हिन्दुओं के द्वारा इस्लाम का यथातथ्य अध्ययन किया ही नहीं गया और न वह आज भी करना चाहते हैं; इसीलिये इस समस्या के मूल को जानना और समझना तथा मुसलमानों के भीतर छिपे हुए खतरनाक इरादों को समझना कठिन ही नहीं असम्भव भी है। इस्लाम को भारत में आये १२८५ वर्ष हो गये, पर आश्चर्य और विडम्बना यह है कि हिन्दू ने लगातार इस्लामी अत्याचारों को सहने तथा सन् १९४७ में अपनी मातृभूमि के बंटवारे के बाद भी यह जानना नहीं चाहा कि इस्लाम है क्या और इन १२८५ वर्षों के लम्बे समय से साथ रहते हुए भी तथा सन् १९४७ में मुस्लिम देश के लिये भारत का मिल जाने पर भी, मुसलमान अभी तक भारत के प्रति वफादार क्यों नहीं हो सका। जो स्वर आज से १४०० वर्ष पहिले अरब में उठा था, वही स्वर आज भी भारत में सुनाया जा रहा है। पिछले ५-६ वर्षों में इस्लाम के अध्ययन से जो ज्ञात हुआ है,

इस्लामी [illegible] बुद्धि के आयने में

प्रारम्भ

सन् १९८५ में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गये शाहबानो के मामले के नाम से प्रसिद्ध फैसले के बाद भारत के कट्टर-पंथी मुस्लिम नेताओं और धर्माचार्यों ने अपनी निरंकुश सत्ता बनाए रखने के लिये इस फैसले के विरुद्ध जबर्दस्त आन्दोलन छेड़ दिया है। अनेक प्रकार की मांगें बना कर तथा न्यायालय की आलोचना कर अब तक वे अपना गुस्सा उतार रहे हैं। जिहाद करने तथा खून बहाने की बात करना तो मुस्लिम नेताओं का स्वाभाविक [illegible] रहा है। इस्लाम के प्रारम्भिक काल में आतंकवाद के आधार पर सफलता मिलने के कारण वह आतंकवादी पद्धति उनके द्वारा आज तक अपनाई जा रही है। अतः "खून बहना और बहाना" का नारा मुसलमानों के लिये स्वाभाविक बन गया है। उनको सताने का आरोप है और मत में दखल दिया जाता। इस सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने लेख लिखे हैं और विभिन्न पहलुओं से शरिअत के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं। किन्तु भारत के हिन्दुओं के द्वारा इस्लाम का यथातथ्य अध्ययन किया ही नहीं गया और न वह आज भी करना चाहते हैं; इसीलिये इस समस्या के मूल रूप को जानना और समझना तथा मुसलमानों के व मौलवियों के खतरनाक इरादों को समझना कठिन ही नहीं असम्भव भी है। इस्लाम को भारत में आये १२८५ वर्ष हो गये, पर आश्चर्य और विडम्बना यह है कि हिन्दू ने लगातार इस्लामी अत्याचारों को सहते तथा सन् १९४७ में अपनी मातृभूमि के बटवारे के बाद भी यह जानना नहीं चाहा कि इस्लाम है क्या और इन १२८५ वर्षों के लम्बे समय से साथ रहते हुए भी तथा सन् १९४७ में मुस्लिम देश के लिये भारत का [भाग] मिल जाने पर भी मुसलमान अभी तक भारत के प्रति वफादार क्यों नहीं हो सका। जो स्वर आज से १४०० वर्ष पहिले अरब में उठा था, वही स्वर आज भी भारत में सुनाया जा रहा है। पिछले ५-६ वर्षों में इस्लाम के अध्ययन से जो ज्ञात हुआ है

उसके आधार पर मैं शरिअत के सम्बन्ध में अपने विचार दे रहा हूं। इसे पढ़ कर भारत का हिन्दू चेतेगा और अपनी नीति निर्धारित करेगा ऐसा विश्वास है।

शरिअत (2)

शरिअत परिचय- शरिअत पर लगभग 200 पृष्ठों की श्री माइल खैरावादी द्वारा लिखित पुस्तक मर्कजी मकतबा इस्लामी दिल्ली-6 से प्रकाशित हुई है। उसमें शरिअत को यों परिभाषित किया गया है:-

"हम अल्लाह की इबादत किस तरह करें? कैसे रहें सहें? लेन देन कैसे करें? एक आदमी के दूसरे आदमी का हक क्या है? क्या हराम है, क्या हलाल है? किस किस चीज को हम किस हद तक बरत सकते हैं और किस तरह बरत सकते हैं आदि"

"ये और इसी तरह की तमाम बातें शरिअत से मालूम होती हैं। इस्लामी शरिअत कुरान और सुन्नह के आधार पर है। कुरआन अल्लाह का कलाम है और सुन्नत वह तरीका है जो नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से हम को मिला है। नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का सारा जीवन कुरआन पढ़ने, समझाने और उस पर अमल करने में बीता। नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का यही बताना समझाना और अमल करना सुन्नत कहलाता है। (पुस्तक की भूमिका से)

"अपने और अपने पैदा करने वाले के सम्बन्ध में जिन बातों का जानना और उन्हें सच्चा मानना जरूरी है उन्हें अकीदा कहते हैं। जब तक अकीदा ठीक न हो, भले से भला काम करके भी हम अपने पैदा करने वाले को खुश नहीं कर सकते। अकीदे ही सारी अच्छाइयों और भलाइयों की जड़ है। इसलिये "इस्लामी शरिअत" में अकीदे के सुधार पर सब से पहिले और सबसे अधिक ध्यान दिया गया है। "इस्लामी शरिअत" में अकीदे की बुनियाद "ला इलाहा इल्लल्लाहु मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह" पर है। यही हमारा कलमा है, इस कलमा को याद रखना और समझना हमारे लिये हर बात से ज्यादा जरूरी है" (पुस्तक, पृष्ठ 6)

उपर्युक्त संक्षिप्त वर्णन से स्पष्ट हो जायेगा कि शरिअत केवल मुसलमानों के लिये है और उन्हीं पर लागू होती है। इसमें सार्वभौमिकता नहीं है और न सार्वभौमिक विचारधारा है, जिसे मुसलमानों के अलावा दूसरे लोगों से सम्बन्धित किया जा सके या गैर-मुसलमान इसे मानने की प्रेरणा पा सकें। अतः शरिअत का पहिला रूप है कि वह स्वकेन्द्रित है तथा केवल मुसलमानों के लिये ही है।

इससे एक दूसरी बात यह भी स्पष्ट होती है कि इसे मानने वाले को मुसलमान हो जाना जरूरी है। अर्थात मुसलमान बगैर हुये शरिअत उसके काम आ ही नहीं सकती। जब शरिअत

कुरान और मोहम्मद साहब की कृतियों के आधार पर हैं और शरिअत (२) इस्लामी अकीदा इन दोनों को मानने और विश्वास करने को कहता है तब मुसलमान हो जाने के अलावा और कोई रास्ता ही नहीं रहता। अकीदा का पालन किस हद तक होना चाहिये, इसे समझने के लिये मर्कजी मकतबा इस्लामी दिल्ली से प्रकाशित पुस्तिका "मुसलमान की मौलिक धारणा" पढ़ें, उस पुस्तिका के पृष्ठ ८ का पैरा ४ निम्न प्रकार है:- "अपने जीवन के प्रत्येक मामले में खुदा की किताब और उसके रसूल के तरीके ही को मूल प्रमाण और स्रोत मानें। जो विचार या आस्था या तरीका किताब और सुन्नत के आदेशानुसार हो, उसे अपनाएं और जो उसके विरुद्ध हो उसे छोड़ दें"। इसके आगे पैरा ५ और भी व्यापक रूप से इस्लामी धारणा को इस प्रकार स्पष्ट करता है।

पैरा ५ = अज्ञान पर आधारित सारी संकीर्णताओं और पूर्वाग्रहों को अपने हृदय से निकाल दें, चाहे उनका सम्बन्ध स्वयं अपने से हो या राष्ट्र और देश से या उनका सम्बन्ध वंश और दल से हो। किसी के प्रेम और श्रद्धा में ऐसे ग्रस्त न हों कि रसूल सल्ल: के लाये हुए सत्य के प्रेम और श्रद्धा पर छा जाये या उसके बराबर का बन जावे"।

इन कुछ पंक्तियों के बयान स्पष्ट कर देते हैं कि कुरान और मोहम्मद साहब की कृतियां ही सत्य हैं और बाकी सब झूठ है। इन्हें मानना ही हर एक के लिये आवश्यक है। अत: शरिअत से किसी और का सम्बन्ध हो सकता है, यह सम्भव नहीं है और न यह ही सम्भव है कि कोई शरिअत को मानने की कोशिश करे तो वह कहां मुसलमान बने बगैर रह सके। ऊपर दिये हुए पैरा ५ से स्पष्ट है कि कोई भी मुसलमान इस्लामी राज्य को छोड़कर और किसी भी देश का हो ही नहीं सकता। हमारे यहां राष्ट्रीय एकता का प्रयास करने वालों को सावधान हो जाना चाहिये। सन १९२० से १९८८ तक तो इस एकता के होने की बात छोड़िये, मुसलमानों की ओर से उसका इशारा भी नहीं हुआ है। इसका कारण ऊपर के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है।

शरिअत में क्या है:- इसे भी प्रत्येक हिन्दू को जान लेना चाहिये। श्री माइल खैराबादी ने अपनी पुस्तक में निम्नलिखित विषय सूची दी है:-

(१) इस्लामी अकीदे (२) कुफ्र और शिर्क की बातें (३) पाकी का बयान

शरिअत (४)

(४) पानी का बयान (५) बदन को पाक करना (६) नहाना गुस्ल (७) तयम्मुम (८) कुछ और जरूरी बातें (९) नमाज (१०) अजान (११) जमाअत से नमाज (१२) जुमे की नमाज (१३) जनाजे की नमाज (१४) मुसाफिर की नमाज (१५) ईद, बकरीद की नमाज (१६) कुरबानी (१७) अकीका (१८) रोजा (१९) तरावीह (२०) फित्र का सदका (२१) जकात का बयान (२२) हज का बयान (२३) मन्नत मानना (२४) कसम खाना (२५) गिरी पड़ी चीज उठाना (२६) कुछ और जरूरी बातें (२७) निकाह (२८) ज्योहार (२९) व्यापार (३०) कर्जा (३१) मांगे की चीज (३२) हक शुफआ।

इसे पढ़ कर आप असंदिग्ध रूप से जान लेंगे कि यह सब अरब की परम्पराएँ और कर्मकाण्ड से सम्बन्ध रखती है। इन्हें बनाने में अरब की जलवायु, उपज, खानपान, चारों ओर का वातावरण, आचार, जीवन का ध्येय और मान्यताएँ, आवश्यकताएँ तथा पर्यावरण का पूरा हाथ है। मोहम्मद साहब की पैगम्बरी से हजारों वर्ष पहिले से ही ये परम्पराएँ बनती रहीं, इनमें परिवर्तन होता रहा, कुछ मिटती रहीं और कुछ नई आती रहीं। मोहम्मद साहब ने भी अपनी आवश्यकताओं को देखते हुए कुछ को छोड़ा और कुछ को परिवर्तन के साथ ग्रहण किया। अतः जो शरिअत है, वह अरब की प्रचलित परम्पराओं, मान्यताओं तथा कर्मकाण्डों का परिवर्तित रूप है॥

अमेरिका के राष्ट्रपति एब्राहम लिंकन ने प्रजातन्त्र की परिभाषा करते हुए कहा था "जनता की सरकार, जनता द्वारा सरकार तथा जनता के लिये सरकार" शरिअत के सम्बन्ध में असंदिग्ध रूप से तथा पूरे जोर के साथ मैं यही बात कहता हूं कि "यह अरब की जनता की है, अरब की जनता द्वारा है और अरब की जनता के लिये है।" इसका सम्बन्ध भारत से रंच मात्र भी नहीं है।

मुसलमान सदैव कहता है कि उसका आइन अर्थात संविधान शरिअत है। भारत के संविधान को वह मान्यता नहीं देता। यह भारत के मुसलमानों की ही नहीं, विश्व के मुसलमानों की मौलिक धारणा है जो "मुसलमानों की मौलिक धारणा" नामक पुस्तिका के उद्धरित अंश से स्वयं सिद्ध हो जाता है। आये दिन मुसलमान मुल्ला, मौलवी, मौलाना और नेता स्पष्ट कहते हैं कि हमारा संविधान शरिअत है। अतः प्रत्येक हिन्दू को संशय रहित होकर समझ लेना चाहिये कि मुसलमान भारत के संविधान को नहीं मानता और दूसरी तरफ से यह अर्थ हुआ कि मुसलमान अपने को भारत के संविधान से अलग कर शरिअत के मातहत ही चलना चाहता है।

इस्लाम स्व केन्द्रित तथा गोपनीय विचारधारा है। वह केवल अपने में ही सिमिट कर रहना चाहती है। उसका सिद्धान्त है कि विश्व से गैर-इस्लाम का नामोनिशान मिटाकर केवल "हुकूमते इलाही" अर्थात अल्लाह

का राज्य अर्थात मुस्लिम शरिअत (१५)॥ शासन हो स्थापित किया जाना आवश्यक है गैर-मुसलमान को इस संसार में रहने का अधिकार ही नहीं है। इस्लाम जन्म से अकेला रहता आया है और अकेला ही रहना चाहता है क्योंकि यह मजहब नहीं है, साम्राज्यवादी राजनीति है, राजनैतिक विचार धारा है। किसी विद्वान ने ठीक ही कहा है कि सशस्त्र पैगम्बर सफल होता है और शस्त्रहीन पैगम्बर विफल होता है। इस्लाम सशस्त्र पैगम्बरी का फल है। एक दूसरे विद्वान ने कहा है कि दस फकीर एक ही गुदड़ी में रह सकते हैं पर दो राजा एक राज्य में नहीं रह सकते। दस मजहब एक ही देश और समाज में रह सकते हैं पर दो राज्य सत्ता साथ नहीं रह सकती। इस्लाम सत्ता पक्ष की राजनैतिक विचारधारा है अतः वह कहीं भी दूसरे के साथ नहीं रह सकती। अतः इस्लाम शक्ति आधारित है। "शक्ति सिद्धान्त" के अनुसार दो शक्तियां साथ साथ नहीं रह सकती। उनमें एकत्व अनिवार्य है और इसलिये दो में से एक ही अपनी योग्यता बनाये रखना चाहेगी। इस्लाम भी किसी के साथ सहयोग नहीं करता और जब तक उसका यह रूप बना रहेगा, वह किसी के साथ सहयोग करेगा भी नहीं। वह अकेला रहता आया है, अकेला रहना चाहेगा। दूसरे के अस्तित्व को स्वीकार करना इस्लाम के बुनियादी तत्वों के विरुद्ध है। अतः शरिअत ही उसका संविधान रहेगा, यह निश्चित है। इस प्रकार अरब का संविधान आज भारत पर बलात थोपा जा रहा है, उसे भारत के संविधान के ऊपर पहुंचाया जा रहा है। आश्चर्य तो इसी बात का है कि समस्त हिन्दू समाज इस तिनके बोझ को देख नहीं पा रहा है और राजनैतिक नेताशाही तथा कांग्रेस सरकार केवल सतही विचार रख चालाकी बातों के आधार पर इस समस्या का समाधान करना चाहती है॥

शरिअत के सम्बन्ध में मुसलमानों में अनेक विचित्र धारणाएं हैं जिन्हें सामान्य बुद्धि तथा मान्यताएं कभी स्वीकार नहीं कर सकतीं। यही कारण है कि गैर-मुसलमानों को कुरान और शरिअत कभी प्रभावित नहीं कर सकीं और विश्व के विद्वानों ने कभी शरिअत को आदर्श बना कर किसी प्रकार का विचार नहीं किया और न किसी प्रकार की जीवन पद्धति के लिये सुझाव दिये॥

इन नियमों के बनाये जाने के सम्बन्ध में भी कुछ विचार पेश करना आवश्यक है। परम्पराएं और कर्म काण्ड देश के अनेक तत्वों के प्रभाव से बनते हैं। और वहां के रहने वालों की आवश्यकताओं के अनुसार बनते बिगड़ते हैं। मोहम्मद साहब का जन्म लगभग ५६९-७० ई. में हुआ था और सन ६१० ई. में उन्होने पैगम्बरी का दावा किया। सन ६२२ ई. में उन्होने मक्का छोड़ा। इस समय तक वे मक्का की परम्पराओं के अनुसार समाज में रहे। निजी तौर पर उनके विचारों में परिवर्तन हो सकता है पर सामाजिक परिवेश तो वैसा ही रहा। सन ६२२ के बाद सन ६३२ (मृत्यु तक) वे मदीने के वातावरण में रहे। सन ६२२-२३ के लगभग बद्र की लड़ाई में विजय मिलने के बाद मोहम्मद साहब की मुस्लिम आबादी और सेना तीव्र गति से बढ़ी।

शरिआत - ६

उनका प्रभाव फैला और दूर
इया ४ वर्षों में सैकड़ों मील के दायरे में उनका प्रभाव फैला और दूर
दूर तक लोग मुसलमान बनाए गये। इन्हीं मुसलमानों को एक-जुट रखने, उन्हें दूसरों
के प्रभाव से बचाये रखने तथा युद्ध की आवश्यकताओं को देखते हुए मोहम्मद
साहब ने नियम और परम्पराएं चलाईं तथा वे स्वयं उसी रूप में व्यवहार करते
रहे। अतः प्रत्येक हिन्दू को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये कि वर्तमान शरिअत
नव मुसलिम समाज तथा नवगठित मुस्लिम सेना के दैनिक जीवन संचालन
के लिये बनाई गयी नियमों का संकलन मात्र है जिसका आधार वर्षों से चली
आ रहीं परम्पराएं तथा मोहम्मद साहब की तत्कालीन आवश्यकताएँ थीं।

इसे समझने के लिये मोहम्मद साहब के अरब के समय तथा उनके पहिले की
परिस्थितियों की झांकी आवश्यक है। अरब सैकड़ों कबीलों में बंटा था तथा हर
कबीले की अपनी मान्यताएँ थी। हर कबीला अपने को किसी महत्वपूर्ण पूर्वजों
से जोड़े रहता था तथा एक मुखिया के निर्देश पर चलता था। क्षेत्रीय स्तर पर
विभिन्नताएं तो थी ही, एक ही क्षेत्र में रहने वाले कबीलों में भी विभिन्नताएं थीं।
अतः पूरे अरब के कबीलों की अपनी अपनी मान्यताएं रहीं। इस विषय को
और अच्छी तरह से समझने के लिये मोहम्मद साहब की २३ वर्षों की पैगम्बरी पर एक
दृष्टि डालना आवश्यक है। सन ६१० ई में जब वे ४० वर्ष के थे उन्होंने
पैगम्बरी का दावा किया। सन ६२१ ई तक वे मक्का में रहे और बाद में सन
६२२ तक मदीने में। जब तक वे मक्का में रहे, अपना सर नहीं उठा सके। मक्का में
वे कोई शक्ति संचित नहीं कर पाये। उन्हें सदैव दब कर रहना पड़ा और अन्त में उन्हें मक्का
छोड़ने के लिये विवश होना पड़ा। अतः अपनी पैगम्बरी के पहिले १२ वर्षों में वे
केवल ६०-६२ आदमियों को मुसलमान बना पाये। शक्ति, जन संख्या तथा प्रभाव के
अभाव में उन्होंने जो भी थोड़ा सा परिवर्तन करना चाहा हलके फुलके
ढंग से कर लिया, जो उनके सीमित समाज तक सीमित रहा, क्योंकि मक्का
के बड़े समाज में ६०-६२ आदमियों का प्रभाव कारगर होना सम्भव नहीं था। पर
सन् ६२२ में मदीने पहुंचने के बाद, सन् ६२३-२४ में जब उन्होंने बद्र की
लड़ाई में विजय पाई उस समय स्थिति बिलकुल बदल गई। मदीने का वातावरण
ऐसा मिला जहां वे राजनीति और कूटनीति द्वारा अपने सहयोगी बनाने में सफल हुए
और अनेक संधियों द्वारा अपनी सुरक्षा का पूरा इन्तजाम कर लिया। मदीने
पहुंचने के ७-८ माह में ही उन्होंने मदीने के लोगों के दिलों में मक्का वालों के प्रति
शत्रुभाव वाली बेहद नफरत पैदा कर दी। उन्हें इसमें पूरी सफलता मिली तथा एक के
बाद एक हमले मक्का के व्यापारी कारवां पर, उसे लूटने के लिये किये गये। लगभग
सन ६२३-२४ के बीच मोहम्मद साहब की फौज और मक्का वालों के बीच बद्र की
घाटी में युद्ध हुआ। मोहम्मद साहब [illegible] जीत गये। लूट का माल काफी *

* मिला। यहीं से लूट की परम्परा पड़ी और जो आज तक इस्लाम में ईश्वरीय विधान मानी जाती है। इसका व्यापक विवरण कुरान और हदीसों में दर्ज है।

शा- ७

सहीह मुस्लिम में इसका विस्तार विवरण दिया गया है।

इसके बाद आठ वर्षों में अर्थात अपने जीवन के अन्तिम आठ वर्षों में मोहम्मद साहब ने ८२ लड़ाइयां लड़ीं। ये ८२ लड़ाइयां तो लिखित अभिलेखों के आधार पर हैं, पर जो अलिखित हैं, उनकी संख्या का अनुमान लगाया जावे तो वे भी काफी होंगी। पाठक स्वयं विचार करें कि जिस व्यक्ति को साल में १२-१५ लड़ाइयां लड़नी पड़ें, उस समाज के संचालन हेतु बनाये गये नियम सार्वभौमिक कैसे हो सकते हैं। इन ८ वर्षों में सैकड़ों कबीलों को लूटा गया और मुसलमान बनाया गया। हवाई जहाज की रफ्तार से बढ़ने वाले विभिन्न स्थान और परम्पराओं के आधीन विशाल नव मुस्लिम समाज की विभिन्न परम्पराओं का समन्वय कर अपने समाज को संगठित रखने के लिये मोहम्मद साहब ने नियम बनाये। इन परिस्थितियों और अरब परम्पराओं के आधार पर बने वही नियम आज शरिअत के रूप में हैं। ये न अल्लाह के आदेश हैं और न ईश्वरीय नियम। सब कुछ मोहम्मद साहब की सूझ बूझ का परिणाम है। इस विषय को पूरी तौर से समझने के लिये मोहम्मद साहब की समालोचनात्मक जीवनी तथा उस समय का अरब का इतिहास पढ़ें। जो कुछ भी हो इन आठ वर्षों में मोहम्मद ने जो कहा और किया वही मुख्य रूप से कुरान और हदीसों में संकलित हुआ है। कुरान और हदीसों के आधार पर शरिअत बनी। यह निर्विवाद सत्य है कि शरिअत स्थानीय कबीलों की परम्पराओं के आधार पर बढ़ते हुऐ मुसलिम समाज और उसका धरती पर प्रभाव के संचालन और नियमन के लिये बने नियम हैं, जो अरब में बने, अरब द्वारा बने और अरब के मुसलमानों के लिये बने। इस प्रकार पराये देश की परम्पराओं और नियमों को जो केवल समय की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये बने, उन्हें भारत पर लादा नहीं जा सकता और न उनके आधार पर भारतीय राष्ट्र का संचालन ही कराया जा सकता।

इस सम्बन्ध में मुसलमान एक प्रश्न उठाते हैं कि शरिअत मजहब का अंग है और यह अल्लाह की बनाई है। इसे कोई छू नहीं सकता। यह सब बातें गलत हैं और पूरे विश्व को भ्रम में रखने वाली हैं। यदि कुरान और हदीसों के साथ मोहम्मद साहब की समालोचनात्मक जीवनी पढ़ी जाये तो स्पष्ट हो जावेगा कि यह सब आवश्यकता के अनुसार बनाये हुये नियम हैं तथा आदेश हैं, अल्लाह का इसमें कोई हाथ नहीं है। जहां तक मजहब का प्रश्न है, इस पर विशेष गहराई में जाने की जरूरत है।

श. ८

मजहब का अर्थ है "प्यास बुझाने का रास्ता या स्थान" यदि हम इसे मान लें और इसे ईश्वर से सम्बन्धित करें तो इसका अर्थ होगा "वह रास्ता या पूजा पद्धति जो हमारी आध्यात्मिक प्यास बुझाये"। साधना सदैव व्यक्तिगत होती है और अपने ही तक सीमित होती है। इस साधना का सम्बन्ध दैनिक जीवन चलाने वाले कर्मकाण्ड से नहीं होता। किसी भी देश की परम्पराएं उस देश की जलवायु, उपज, पर्यावरण, भौगोलिक स्थिति और जीवन चलाने की आवश्यकताओं के आधार पर बनती हैं और वे सभी उस देश की अपनी होती हैं। मजहब व्यक्तिगत होता है। इसकी पुष्टि भारतीय युवक कांग्रेस (इ) के महामन्त्री श्री इसरार किदवई ने दि. २८ जनवरी १९८६ को पत्रकारों से बातें करते हुए की है। उन्होंने कहा कि "ये दोनों अलग अलग चीजें हैं। धर्म व्यक्तिगत चीज है और राष्ट्र सार्वजनिक मामला है। फिर भी राष्ट्र सर्वोपरि है।" यह उत्तर उस प्रश्न के सम्बन्ध में था, जिसमें उनसे पूछा गया था कि वे राष्ट्र और धर्म में किसे प्रथम मानते हैं।" (नई दुनिया, इन्दौर दि. २९-१-८६)। शरियत दैनिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाली परम्पराएं हैं, जो अरब देश के जीवन तथा उनकी आवश्यकताओं के आधार पर बनी हैं। इसके अलावा ये सभी परम्पराएं १४०० वर्ष पुरानी बद्दू जीवन, युद्ध और बनने की स्थिति में पड़े मुस्लिम समाज से सम्बन्धित हैं। भारत से इनका दूर का भी सम्बन्ध नहीं है और न इनकी भारत में जरूरत है। एक बात और है। साधना के सम्बन्ध में कुछ कर्मकाण्ड और परम्पराएं होती हैं, जो साधना की क्रिया का संचालन करती हैं। ऐसी परम्पराओं के सम्बन्ध में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। बस शर्त यही है कि वे दूसरों को प्रभावित न कर रहीं हों। इस विषय का खुलासा एक घटना से अच्छा हो जाता है। सन १९५३-५४ की बात है। दक्षिण भारत के एक ईसाई धर्माचार्य चीन गये थे और वहां वे प्रधान मन्त्री श्री चाऊ-एन-लाई से मिले थे। धर्माचार्य महोदय ने प्रधान मन्त्री से कहा कि वे चीन में मजहबी आजादी दे दें। श्री चाऊ-एन-लाई ने उत्तर दिया कि मजहब व्यक्तिगत होता है। इसकी आजादी आज भी चीन में है। पर यदि आप चाहते हैं कि पड़ोसी को इससे प्रभावित करें तो यह अनुमति नहीं दी जा सकती। श्री चाऊ-एन-लाई राजनेता के साथ साथ राष्ट्र नेता भी थे, अतः यह ज्ञान उन्हें था कि ईसाइयत और इस्लाम क्या है। उन्होंने मजहब की आजादी तो दी, पर राष्ट्र विनाश की नहीं। यदि ऐसा ज्ञान सन १९४७ में श्री नेहरू तथा कांग्रेस को होता तो आज मुझे यह पुस्तक लिखने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। यदि आज भी यह ज्ञान हिन्दू, कांग्रेस और कांग्रेस सरकार को हो जावे तो हमारी बहुत सी समस्याओं का हल आसानी से निकल सकता है।

इसके अलावा यह भी देखना है कि भारत का मुसलमान यहीं का रहने वाला है। किसी भी कारण से हो, वह हिन्दू से मुसलमान बना है। हिन्दुओं ने

इस्लाम को मजहब के रूप में स्वीकार किया। अतः यदि इस्लामी पूजा पद्धति के सम्बन्ध में कोई परम्परा या कर्मकाण्ड है तो इसकी छूट हो सकती है। पर इस आधार पर उसे दूसरों को प्रभावित करने का अधिकार नहीं होगा, जैसाकि चाऊ-एन लाई ने चीन में निश्चित किया था।। पर अन्य मामलों में मुसलमान को भारत की परम्पराओं के अनुसार रहना पड़ेगा, क्योंकि वह पूरी तरह भारत का है। इस्लाम ग्रहण करने का अर्थ देश, धर्म संस्कृति, पूर्वज, साहित्य, आदर्श आदि बदलना नहीं है। इसलिये किसी भी हालत में अरबी परम्पराओं के आधार पर चलने की मांग स्वीकार नहीं की जा सकती। आज जो भी मुस्लिम शरिअत के नाम पर चलाई जा रही है उसका कोई भी सम्बन्ध साधना या मजहब से नहीं है। वह सब सामाजिक जीवन चलाने से सम्बन्धित है। हम सब सामाजिक भारतीय नागरिक हैं अतः भारतीय संविधान के आधार पर ही कोई भी मांग की जा सकती है, शरिअत के आधार पर नहीं। मुसलमान भारत में जन्मा, यहां ही पला और यहां रहकर इसी मिट्टी में दफन हो जावेगा। अतः जो समाज हर प्रकार से भारत का है, वह केवल मजहब या पूजा पद्धति या ईश्वर प्राप्ति की विशेष पद्धति के आधार पर भारत तथा उससे सम्बन्धित सभी बातों से अपने को अलग नहीं कर सकता। पर इस्लाम मुसलमानों को सब से काट कर अलग रखने वाली विचार धारा है। मुसलमानों का यह कहना कि वे अपनी पहिचान अलग बनाये रखेंगे स्पष्टतः यह सिद्ध करता है कि वे १२५४ वर्ष के बाद भी भारत के साथ नहीं हैं और वे अलग रहना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में मैं श्री सुब्रमनियम स्वामी जो जनता पार्टी में थे तथा अब भी सक्रिय राजनीति में हैं का अनुभव दे रहा हूं। लगभग १९८३ ई. में वे चीन गये थे। वैसे वे चीन जाते रहते हैं और चीनी भाषा तथा बोलियां उनको बखूबी आती हैं। जब वे १९८३ के लगभग चीन गये तो उन्होंने जानना चाहा कि धर्म के सम्बन्ध में चीनी जनता का क्या रुख है क्योंकि चीन एक कम्युनिस्ट देश है। जनता में पूछने पर चीनी लोगों ने कहा कि वे धर्म की ओर वापस आ रहे हैं। यह पूछने पर कि वे किस धर्म को स्वीकार करेंगे, उन्होंने उत्तर दिया "बौद्ध धर्म"। कारण पूछने पर उत्तर दिया कि "यद्यपि इस्लाम और ईसाई धर्म भी यहां हैं, पर वे उन्हें स्वीकार नहीं करेंगे क्योंकि दोनों धर्म हमें हमारे देश, पूर्वज, साहित्य और परम्पराओं से अलग कर देते हैं, पर बौद्ध धर्म ऐसा नहीं करता"। इसीलिये मैं बार बार कहता हूं कि इस्लाम का अध्ययन कर हिन्दुओं को उसके वास्तविक स्वरूप को पहिचानना चाहिये। हिन्दुओं ने सन् १९४७ में "मुस्लिम होम लैण्ड" मुस्लिम नेशन के आधार पर उन्हें दे दिया। इतना हो जाने पर भी यदि मुसलमान भारत, भारती और भारतीयता के साथ सामरस नहीं हो सका और न होना चाहता है तथा अपनी पहिचान अलग रखना चाहता है तो उसे इसकी इजाजत नहीं दी जा सकती। इसका एक ही विकल्प है कि वह भारत छोड़ कर जहां अलग पहचान मिले

अ

वहां चली जावें। पर वह अपने साथ धन सम्पत्ति नहीं ले जा सकते क्योंकि पिछले १२०० वर्षों में इस्लाम के नाम से जो लूट हुई है, वह स्वयं में आवश्यकता से अधिक है। सन १९४७ में सभी मुसलमानों को चले जाना चाहिये था। हिन्दुओं ने पैर पकड़ कर उन्हें नहीं रोका था और न बगैर मुसलमानों के राष्ट्र निर्माण का कार्य ही रुका पड़ा था। जब दो राष्ट्र के आधार पर बंटवारा हो गया और मुसलमान भारत में रह गया, तब उसे हिन्दू राष्ट्र के अन्तर्गत ही रहना पड़ेगा। ऐसा मुसलमान और उनके नेता जानते थे। सन १९५३-५४ के लगभग लाहौर में दंगा हुआ था और पाकिस्तान सरकार ने जस्टिस मुनीर की अध्यक्षता में जांच आयोग बिठाया था। जस्टिस मुनीर ने इसी आशय के सीधे प्रश्न मुस्लिम संस्थाओं के अध्यक्षों से किये थे और अध्यक्षों ने साफ और सीधा यही उत्तर दिया था, जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, कि बटवारे के बाद मुसलमानों को हिन्दू राष्ट्र के अन्तर्गत रहना पड़ेगा। अधिक जानकारी के लिये जस्टिस मुनीर की रिपोर्ट पढ़ लें। यदि आज भी मुसलमान अपना अलग अस्तित्व और भारतीय संविधान से अलग शरिअत कोई चाहता है तो उसे पहिले ही पाकिस्तान चले जाना चाहिये था। इन्हीं चीजों को अलग रखने के लिये मुस्लिम लीग ने मुस्लिम गृह प्रदेश मांगा था। सन १९४० में लाहोर अधिवेशन में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान का प्रस्ताव पारित किया था। उस अधिवेशन तथा उसके बाद के लीगी नेताओं के भाषण स्थिति को स्पष्ट कर देंगे। हिन्दुओं ने अपनी मातृभूमि के टुकड़े कर "मुस्लिम गृह प्रदेश" दे दिया, जहां शरिअत का खेल खेला जा सकता था और खेला जा रहा है, शेष भारत भारती और भारतीयता के आधार पर, भारतीय संविधान के अन्तर्गत चलेगा। इस प्रश्न पर कोई समझौता नहीं हो सकता।

यदि मुसलमान अब भी अलगाव की बात करता है और कांग्रेस उसकी मांग के आगे झुक जाती है तो दोनों को स्पष्ट रूप से यह समझ लेना चाहिये कि दोनों ही सन १९४७ के समझौते को नकार रहे हैं। ऐसी अवस्था में हिन्दुओं को भी निश्चय करना पड़ेगा कि सन १९४७ का बंटवारा हुआ ही नहीं अतः पाकिस्तान भारत का हिस्सा है उसे बल पूर्वक जीत कर मुसलमानों से खाली करा लेना चाहिये। अपना हिस्सा ले लेने के बाद भी पराये हिस्से पर अधिकार दिखाना चरमसीमा का अन्याय है, जिसे हिन्दुओं ने अब तक सहा पर अब आगे सहने के लिये उन्हें तैयार नहीं होना चाहिये। बंटवारे पर कांग्रेस और मुसलमानों की ओर से मुस्लिम लीग के हस्ताक्षर हैं। इससे दोनों मुकर नहीं सकते। मुसलमानों को कहने का कोई हक नहीं है। वे भारतीय नागरिक हैं तो भारतीय संविधान के अनुसार रहें अन्यथा जिस देश के संविधान के अन्तर्गत वे नागरिक रह कर उसके सगे हो सकते हैं, उस देश में वे चले जायें।

सन १९४७ में बंटवारे के बाद जो मुसलमान भारत में रह गये, वे देश के जन्म जात निवासी के आधार पर नागरिक मान लिये गये। उनकी नागरिकता

इसलिये नहीं मानी गई थी कि वे कुरान, हदीस और शरिअत को मानते हैं और न इस प्रकार किसी की नागरिकता ही भारत में निर्धारित की गई है। सन् १९५० में जब संविधान लागू हुआ, तब भी मुसलमानों की नागरिकता की परख कुरान, हदीस और शरिअत नहीं थी और न संविधान-निर्माताओं ने इस आधार पर नागरिकता को परिभाषित ही किया था। मजहब की स्वतन्त्रता संविधान में है, उसे मैं छीनने के लिये नहीं कह रहा हूं, मुसलमान मजहबी आजादी लें। संविधान सब के लिये बना था और आज तक सभी नागरिकों को बगैर मजहबी भेद भाव के संरक्षण और सुविधायें मिल रही हैं, मनुस्मृति, बाईबिल या कुरान के आधार पर ये संरक्षण और सुविधायें नहीं प्रदान की गई हैं। अतः मुसलमानों को अपनी पूजा पद्धति या आध्यात्मिक साधना अर्थात ईश्वर-प्राप्ति के क्रम में जो परम्पराएं और कर्म काण्ड आवश्यक हैं, उन्हें वे कर सकते हैं, पर शर्त यही रहेगी कि वह उन तक ही सीमित हो और उनसे दूसरों को प्रभावित न करे। भारतीय आदर्शों के विरुद्ध या भारतीय संविधान के विरुद्ध कुछ भी सहन करना सम्भव नहीं है। अतः शरिअत के आधार पर मांग करना, अपना अस्तित्व अलग रखना, अपनी अलग पहिचान रखना और भारत, भारती और भारतीयता से पूर्ण रूपेण कट कर अपना अलग झंडा, अलग पंडा और अलग डंडा बनाने की इजाजत रंच मात्र भी नहीं दी जा सकती। शरिअत अरब का संविधान है, अरब के मुसलमानों के लिये है, अतः इसे न तो भारत पर लागू किया जा सकता और न इसे भारतीय जीवन पर प्रभावी ही बनाया जा सकता। हिन्दुओं ने इस्लाम का अध्ययन किया ही नहीं, अतः वे जानते ही नहीं कि शरिअत में क्या है। जब हिन्दू इस्लाम का सांगोपांग अध्ययन करेगा और शरिअत की गहराई में जायेगा तो उसे अपने आप मालूम हो जायेगा कि शरिअत भारतीय परम्पराओं और आदर्शों के बिलकुल विपरीत है। इतना ही नहीं, उसमें दी हुई परम्पराओं पर हिन्दू को अति आश्चर्य होगा। उसे सोचने के लिये विवश होना पड़ेगा कि क्या ऐसा भी हो सकता है। इस सम्बन्ध में मैं आगे चल कर उदाहरण द्वारा और खुलासा करूंगा। अभी तो यही विचार करना है कि भारत जैसे विकसित और परिपक्व देश की परम्पराओं और आदर्शों के विपरीत परम्पराओं को भारत के ऊपर लाद कर उन्हें भारतीय संविधान के ऊपर पहुचाने का प्रयास क्यों किया जा रहा है? कांग्रेस और अब अन्य राजनैतिक दल भी मुसलमानों के तलुए चाटने की होड़ लगाये हुये हैं। उन्हें खुश करने के लिये वे सब देश की अस्मत और आदर्श दाँव पर लगाये जा रहे हैं। पर अभी तक मुसलमानों ने कोई परिवर्तन अपने में नहीं किया। विचार करें कि भारतीय संसद में "शरिअत कोर्ट" बनाने का विधेयक लाने का साहस मुसलमानों में कैसे आ गया? पूरी लोक सभा और पूरे हिन्दू समाज ने यह अनुमति क्यों दी? बहस के दौरान शरिअत का वास्तविक स्वरूप क्यों प्रकट नहीं किया गया? बहर हाल एक इस पहलू से हम और विचार करें कि शरिअत को क्या भारत में कोई स्थान दिया भी जा सकता है?

हमारे पूर्वजों ने पिछले १२७५ वर्षों में देश की आजादी के लिये सतत संघर्ष किया है। देश की स्वतन्त्रता का इतिहास भी गौरवमय है। यह कांग्रेस, जो पिछले ३८ वर्षों से सत्ता में है, अपने को पुरानी कांग्रेस का वारिस मानती है। इसी कांग्रेस के मंच से अपने पूर्वजों ने "स्वराज्य" की मांग की थी। "स्वराज्य" और "सुराज्य" दो शब्द हैं। "सुराज्य" की अगर मांग होती, तो सन् १९४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन की आवश्यकता ही नहीं होती। अंग्रेजी राज्य बना रहता और हम शीघ्र और भलाई करने वाले प्रशासन की मांग करते। "सु" माने अच्छा और "राज्य" माने शासन अथवा प्रबन्ध। इस मांग में देशी और विदेशी शासन का प्रश्न उठता ही नहीं। प्रश्न रहता है हितकारी राज्य का। पर ऐसा नहीं हुआ। मांग की गई थी "स्वराज्य" की और "भारत छोड़ो" आन्दोलन का मतलब था अंग्रेजों द्वारा भारत छोड़ कर चले जाना। "स्व" आत्मवाचक शब्द है। अतः हमारी मांग थी ऐसे राज्य की, जो हमारी आत्मा के अनुकूल हो, हमारी धरती से उत्पन्न विचार, भाव, सभ्यता, संस्कृति, धर्म, आदर्श, महापुरुष, साहित्य, इतिहास, जीवन दर्शन और जीवन के ध्येय आदि से जुड़ा हो, उसी के आधार पर हो। साथ ही वह अपने द्वारा संचालित हो। जब कांग्रेस अपने को स्वतन्त्रता दिलाने वाली संस्था समझ कर सब यश ले रही है तब क्या कारण है कि शरिअत तथा इस्लाम के अन्य अंगों के प्रभाव में भारत को लाया जा रहा है और कैसे मुसलमानों को इतना अवसर दिया गया और दिया जा रहा है कि शरिअत के अनुसार भारतीय संविधान के तहत बनी फौजदारी संहिता की धारा १२५ में संशोधन करने का विधेयक लाना पड़ा। इसका स्पष्ट अर्थ है कि शरिअत संविधान के ऊपर है और मुसलमान अलग राष्ट्र है जिस पर उनका संविधान शरिअत लागू होता है, भारतीय संविधान नहीं। धारा १२५ में संशोधन का विधेयक और "शरिअत कोर्ट" का विधेयक का संसद में आना यह बतलाता है कि शरिअत पूरे भारत के ऊपर है और जो शरिअत चाहती है वह भारत को करना है। भारत का मुसलमान, भारत के संविधान से सब कुछ प्राप्त करने के बाद भी, उसके मातहत नहीं रहना चाहता, बल्कि भारत तथा उसके संविधान के ऊपर शरिअत को लाना चाहता है। शरिअत कोर्ट के माने हैं मुसलमानों की अदालत। यह अंशतः ही सही पर है वह यथार्थ में अलग। यह अदालत कुरान और हदीसों के आधार पर संचालित होगी। इस प्रकार भारत में दो समानान्तर संविधान या अधिकार के दो समानान्तर स्रोत तय्यार हो जावेंगे। आगे चल कर लगभग सभी बातों में शरिअत कोर्ट अर्थात शरिअत का उपयोग होगा। इसकी अपील सामान्य न्यायालय में हो ही नहीं सकेगी, क्योंकि मुसलमान का दावा है कि शरिअत को कोई छू नहीं सकता। अतः शरिअत कोर्ट अपने आप में अपील की व्यवस्था बनायेगी, जिस पर केवल मुसलमान, कुरान, हदीस और शरिअत का अधिकार होगा। मैं आपको प्रारम्भ में ही शरिअत की परिभाषा दे चुका हूं

और शरिअत के विषय भी दे चुका हूं। मुस्लिम समाज का सभी काम शरिअत के आधार पर होता है, अतः भारत में १०-१२ करोड़ की जन संख्या का एक शतांश पंथ, डंडा और झंडा बनेगा, व्यावहारिक रूप से यह देश का बंटवारा है जिससे आये दिन संघर्ष और सामान्य अदालतों और शरिअत कोर्ट में टकराव होगा। एक ही देश में दो सत्ता, दो समानान्तर व्यवस्था से चलेगी। मैं पहिले कह चुका हूं कि इस्लाम मजहब नहीं सत्ता पक्ष की राजनीति है, साम्राज्यवादी राजनीति है। वह धीरे धीरे पैरा डालती है और धीरे धीरे शक्ति प्राप्त कर दूसरों को जीना मुश्किल कर देती है। इसका अच्छा उदाहरण उर्दू का द्वितीय भाषा बनवाना है। अतः मुसलमानों की राजनीति है और कूटनीति की चालों से सावधान रहने की आवश्यकता है। हमें यह दो टूक उत्तर दे देना चाहिये कि शरिअत अरब की है, वह अरब में रहे या मुस्लिम देश अपना अरबीकरण करना चाहें तो करें। भारत में इस्लाम का भारतीयकरण करना होगा। भारत का अरबीकरण नहीं होने दिया जायेगा। यह निश्चय सरकार और गैर-मुस्लिम समाज को घोषित कर देना चाहिये। शरिअत के आधार पर मुसलमानों की मांगों के दायरे पर भी विचार करना जरूरी है।

शरिअत की सूची मैं पहिले दे चुका हूं। इन सब विषयों पर मुसलमान नेता शोर नहीं मचाते। तीन विषयों पर शोर मचाते हैं (१) विवाह (२) तलाक (३) उत्तराधिकार। इन तीन विषयों में से भी उत्तराधिकार पर कभी-कभार हल्की सी आवाज सुनाई दे जाती है। इस प्रकार शरिअत के शोर का दायरा दो विषय हैं। (१) विवाह (२) तलाक। इन दोनों विषयों पर ही शोर होता है, इसका अनुभव आप पहिले भी कर चुके होंगे और आज की परिस्थितियों में भी कर रहे हैं। इन पर मैं अपने विचार नीचे दे रहा हूं :-

(१) विवाह - पाठक गौर करें। शरिअत की मांग को सामने रखकर मुस्लिम नेता और मौलाना जिस आन्दोलन को लगातार हवा दे रहे हैं, वह केवल शरिअत के अनुसार विवाह रस्म को लेकर नहीं है प्रत्युत एक मुस्लिम व्यक्ति द्वारा ४ विवाह करने के अधिकार के लिये किया जा रहा है। इस मांग या अधिकार का आधार कुरान का सूरः ४ अननिसा की आयत संख्या ३ है। इसे समझने के लिये मैं इस अध्याय (सूरः) की आयतें २+३ दोनों दे रहा हूं :-

आयत २ - "और यतीमों का धन लौटा दो और अच्छी चीज के बदले बुरी चीज न लो और अपने माल के साथ उनके माल मिलाकर न खा जाओ। निस्संदेह यह बहुत बडा गुनाह है।

आयत-३ - "यदि तुम्हें इस बात का भय हो कि यतीमों के साथ न्याय न कर सकोगे तो अपनी इच्छानुसार दो-दो, तीन-तीन और चार-चार से विवाह कर लो, परन्तु यदि तुम्हें इसका भय हो कि उनके साथ समता का व्यवहार न कर सकोगे तो फिर एक ही से (विवाह करो) या वह (लौंडी)

जो तुम्हारे कब्जे में हो (उसी पर बस करो) इसमें तुम्हारे ज्यादती से बचे रहने की अधिक सम्भावना है

इस आयत पर अनुवादक की टिप्पणी निम्न प्रकार से की गई है:-

"अर्थात यदि तुम्हें यह भय हो कि यतीमों के साथ इन्साफ न कर सकोगे तो उनकी माँओं से तुम विवाह कर लो, ताकि तुम उनकी ठीक तौर पर सरपरस्ती कर सको। एक समय में तुम एक से लेकर चार विवाह तक कर सकते हो।' (सन्दर्भ: हिन्दी कुरान। अनुवादक-श्री मोहम्मद फारूख खां, प्रकाशक- मकतबा अल इस्लाम रामपुर उ.प्र. १९८८ संस्करण)

इस प्रकार आप देखेंगे कि शरीअत के एक विषय विवाह में भी मुसलमान केवल चार शादियों के अधिकार पर ही शोर मचाता है और जिहाद अथवा खून बहाने, बहाने की बात करता है। देखा जाये कि ४ विवाह तक करने की छूट की स्थिति और परिस्थिति क्या है। इसे समझने के लिये मोहम्मद साहब के जीवन तथा कार्य का सिंहावलोकन करना पड़ेगा।

सन ६२२-२३ के लगभग मोहम्मद साहब ने बद्र की लड़ाई में विजय पाई। उसके बाद उन्होंने एक के बाद एक हमले किये और ७-८ वर्षों में ८२ लड़ाइयां लड़ीं। प्रारम्भ में जब २-४ लोग मरते रहे तो उनकी विधवाओं और बच्चों का कुछ न कुछ प्रबन्ध हो जाता था, पर युद्ध के बाद युद्ध होने पर जब काफी लोग मरने लगे तब समाज में परेशानी पैदा हुई, क्योंकि इतनी विधवाओं और बच्चों को समाज में सम्हालना सम्भव नहीं था। लोगों ने सवाल उठाया कि हम तो मोहम्मद साहब के लिये लड़ने जाते हैं, पर हमारे बीबी-बच्चों को कौन देखेगा। महिलाओं ने भी यही प्रश्न उठाया। जब मोहम्मद साहब ने देखा कि उनको सेना इकट्ठी करने में कठिनाई पड़ेगी तब उन्होंने उपर्युक्त व्यवस्था की। आप दोनों आयतों और टिप्पणी पर गौर करें, तो बात असंदिग्ध रूप से समझ में आ जायेगी। बात स्पष्ट है कि अनाथ बच्चों और विधवाओं को सहारा देने के लिये ही उपर्युक्त विधान किया गया है। इस आयत से आप यह भी समझ सकते हैं कि अगर मोहम्मद साहब ने केवल बच्चों का ही प्रबन्ध किया होता तो पराई स्त्री के पास बच्चे जाने पर समस्यायें खड़ी हो जातीं। अतः मय माँ के जाने पर बच्चों को सगी माँ का संरक्षण मिल गया तथा यार्थ की समस्याएं भी खड़ी नहीं हुईं। अत: १-२-३-४ विवाह का विधान कर दिया गया। इसमें एक बात और स्पष्ट है। यदि व्यक्ति इन्साफ नहीं कर सकता तो एक ही विवाह काफी है। इस विधान में मोहम्मद साहब की उच्च कोटि की बुद्धिमानी और नीतिज्ञता प्रकट होती है। अगर उन्होंने ४ स्त्रियों का ही नियम कर दिया होता तो यह व्यक्ति के सामर्थ्य के बाहर होता तथा इस बोझ के कारण फिर वही विरोध की समस्या सामने आती और मोहम्मद साहब के साथ आने और युद्ध में जाने के लिये लोग सहसा तय्यार नहीं होते। यह अनिवार्यता लोग स्वीकार नहीं करते। परिणाम वही होता जो बच्चों और विधवाओं को अनाथ छोड़ने पर ही रहा था, अर्थात मोहम्मद

साहब के साथ युद्ध में जाने में हिचकिचाहट होती। एक से चार तक की छूट दे देने से जिम्मेदारी मोहम्मद साहब की नहीं, वरन कठिनाई पड़ने पर जिम्मेदारी उसी व्यक्ति की, जिसने ४ शादियां की क्योंकि मोहम्मद साहब ने सामर्थ्य और इन्साफ की शर्त लगा दी थी। किसी को कुल भुनाने और आपत्ति करने का अवसर ही नहीं छोड़ा। प्रत्येक गैर-मुसलमान को यह बात समझ लेनी चाहिये कि कुरान जरूरत के अनुसार उतरा है। अतः कुरान की हर आयत को समझने के लिये उसका "शाने-नजूल", उतरने की परिस्थिति और कारण समझना जरूरी है। केवल शब्दों या आयतों से आने वाले भावों के आधार पर कुरान कभी नहीं समझी जा सकती। अतः जो सत्य है, निर्विवाद है, वह यही है कि युद्ध की परिस्थितियों से उत्पन्न समस्या का समाधान मोहम्मद साहब ने बुद्धिमानी पूर्वक किया। इसमें न अल्लाह है और न ईश्वरीय नियम। अतः मुसलमानों के दावे कि ~~सब~~ शरिअत को कोई छू नहीं सकता और वह ईश्वरीय नियम है केवल प्रचार मात्र है, जिसे आतंक तथा बल के सहारे दूसरों से मनवाने का काम मुसलमानों ने अब तक किया और आज भी भारत में वे वही कर रहे हैं। ~~आपने~~ अपने इस काम में मुसलमान सफल हो जाते हैं, क्योंकि वह जन्मजात राजनीतिज्ञ और कूटनीतिज्ञ होते हैं। इस्लाम स्वकेंद्रित तथा गोपनीय विचार धारा है। दूसरी ओर हिन्दू और हिन्दू नेतृत्व भोला भाला और कायरता की ओढ़नी ओढ़े स्वार्थ में पड़ा है। इस प्रकार शरिअत का एक मुद्दा ४ विवाह है, जिसको लेकर तमाम शोर गुल होता है। उसका उत्तर एक यही है कि इस समय न तो पुरानी परिस्थितियां हैं और न उनकी आवश्यकताऐं। अतः कुरान के निर्देशानुसार एक विवाह काफी है। भारतीय कानून भी यही है।

इस प्रश्न के साथ बच्चों का प्रश्न भी जुड़ा है। मुसलमान कहते हैं कि बच्चे तो अल्लाह की देन हैं, अतः परिवार नियोजन अल्लाह के हुक्म के खिलाफ है, मजहब के खिलाफ है। यह एक बेतुका तर्क है। उदाहरण द्वारा यह बतलाया जा सकता है कि मुसलमान अल्लाह के कामों में रोज दखल देता है। खतना एक विशिष्ट उदाहरण है। आज भी जब मुसलमान के घर लड़का पैदा होता है तब उसके गुप्तांग के सिरे पर मांस चढ़ा रहता है। इस मांस को मुसलमान काट कर निकाल देते हैं और इसे मुसलमानी होना कहते हैं। इस प्रकार मन गढ़न्त बातें बतला कर वे झूठ को पेश कर रहे हैं। यदि मांस का न रहना अल्लाह की रजामन्दी है तो जन्म से ही वहां मांस नहीं होना चाहिये था, पर आज तक अल्लाह विश्व के सभी लड़कों के गुप्तांग के सिरे पर मांस चढ़ा कर ही जन्म दे रहा है। इस प्रकार क्या खतना की रस्म अल्लाह के कामों में दखल नहीं है? अतः इस प्रकार के ~~थोथा~~ थोथे तर्कों में पड़ना व्यर्थ है। कितने बच्चे होंगे या होने पर कोई व्यक्ति किसी मजहब को मानने वाला बनेगा ऐसा कोई ईश्वरीय विधान कहीं नहीं है। ईश्वरीय विधान यही है कि सृष्टि चलती रहे। मनुष्य बूढ़ा होता है और मरता है। उसकी जगह दूसरा मनुष्य ले लेता है और सृष्टि चलती रहती है। लेकिन मुसलमान नेता अपनी मनगढ़न्त बातें मनवाने तथा अपना रौब बनाए रखने के लिये इसे भी मजहब के साथ जोड़कर इसकी आड़ में कुछ न कुछ आतंक फैलाने का प्रयास

साहब के साथ युद्ध में जाने में हिचकिचाहट होती। एक से चार तक की छूट दे देने से जिम्मेदारी मोहम्मद साहब की नहीं, वरन कठिनाई पड़ने पर जिम्मेदारी उसी व्यक्ति की, जिसने ४ शादियां की क्योंकि मोहम्मद साहब ने सामर्थ्य और इन्साफ की शर्त लगादी थी। किसी को कुरान सुनाने और आपत्ति करने का अवसर ही नहीं छोड़ा। प्रत्येक गैर-मुसलमान को यह बात समझ लेनी चाहिये कि कुरान जरूरत के अनुसार उतरा है। अतः कुरान की हर आयत को समझने के लिये उसका शाने-नजूल, उतरने की परिस्थिति और कारण समझना जरूरी है। केवल शब्दों या आयतों से आने वाले भावों के आधार पर कुरान कभी नहीं समझी जा सकती। अतः जो सत्य है, निर्विवाद है, वह यही है कि युद्ध की परिस्थितियों से उत्पन्न समस्या का समाधान मोहम्मद साहब ने बुद्धिमानी पूर्वक किया। इसमें न अल्लाह है और न ईश्वरीय नियम, अतः मुसलमानों के वर्चस्व के शरिअत को कोई छू नहीं सकता और वह ईश्वरीय नियम है केवल प्रचार मात्र है, जिसे आतंक तथा बल के सहारे दूसरों से मनवाने का काम मुसलमानों ने अब तक किया और आज भी भारत में वे वही कर रहे हैं। ~~आमने~~ अपने इस काम में मुसलमान सफल हो जाते हैं, क्योंकि वह जन्मजात राजनीतिज्ञ और कूटनीतिज्ञ होते हैं। इस्लाम स्वकेंद्रित तथा गोपनीय विचार धारा है। दूसरी ओर हिन्दू और हिन्दू नेतृत्व भोला भाला और कायरता की ओढ़नी ओढ़े स्वार्थ में पड़ा है। इस प्रकार शरिअत का एक मुद्दा ४ विवाह है, जिसको लेकर तमाम आक्रमण होता है। उसका उत्तर एक यही है कि इस समय न तो पुरानी परिस्थितियां हैं और न उनकी आवश्यकताऐं। अतः कुरान के निर्देशानुसार एक विवाह काफी है। भारतीय कानून भी यही है।

इस प्रश्न के साथ बच्चों का प्रश्न भी जुड़ा है। मुसलमान कहते हैं कि बच्चे तो अल्लाह की देन हैं, अतः परिवार नियोजन अल्लाह के हुक्म के खिलाफ है, मजहब के खिलाफ है। यह एक बेतुका तर्क है। उदाहरण द्वारा यह बतलाया जा सकता है कि मुसलमान अल्लाह के कामों में रोज दखल देता है। खतना एक विशिष्ट उदाहरण है। आज भी जब मुसलमान के घर लड़का पैदा होता है तब उसके गुप्तांग के सिरे पर मांस चढ़ा रहता है। इस मांस को मुसलमान काट कर निकाल देते हैं और इसे मुसलमानी होना कहते हैं। इस प्रकार मन गढ़न्त बातें बतला कर वे कुछ को पेश कर रहे हैं। यदि मांस का न रहना अल्लाह की रजामन्दी है तो जन्म से ही वहां मांस नहीं होना चाहिये था, पर आज तक अल्लाह विश्व के सभी लड़कों के गुप्तांग के सिरे पर मांस चढ़ा कर ही जन्म दे रहा है। इस प्रकार क्या खतना की रस्म अल्लाह के कामों में दखल नहीं है? अतः इस प्रकार के थोथे तर्कों में पड़ना व्यर्थ है। कितने बच्चे होंगे या होने पर कोई व्यक्ति किसी मजहब को मानने वाला बनेगा ऐसा कोई ईश्वरीय विधान कहीं नहीं है। ईश्वरीय विधान यही है कि सृष्टि चलती रहे। मनुष्य बूढ़ा होता है और मरता है। उसकी जगह दूसरा मनुष्य ले लेता है और सृष्टि चलती रहती है। लेकिन मुसलमान नेता अपनी मनगढ़न्त बातें मनवाने तथा अपना रौब बनाए रखने के लिये इसे भी मजहब के साथ जोड़कर इसकी आड़ में कुछ न कुछ आतंक फैलाने का प्रयास

करते हैं। अतः कितने बच्चे होने चाहिये- इनका सम्बन्ध सामाजिक मर्यादा और आवश्यकताओं के अनुसार होता है, न कि मुस्लिम नेताओं की मनगढ़न्त बातों के अनुसार। यह भी निर्विवाद सत्य है कि आज की परिस्थितियों के मुताबिक एक विवाह और दो बच्चों का नियम मानने के लिये सरकार आदेश दे और हिन्दू, सरकार को विवश कर दें कि इस कानून को सरकार अविलम्ब मुसलमानों पर भी लागू कर दे और यदि मुसलमान इन्कार करें तो संविधान के द्वारा मिलने वाली सभी सुविधाओं से उन्हें वंचित कर दे। यदि मुसलमान जिद करता है तो उसके परिणामों की जिम्मेदारी मुसलमानों की ही होगी। इसे कैसे लागू किया जावे इस पर सुझाव अलग से दिये जा सकते हैं।

दूसरा मुद्दा जो शरिअत की आड़ में प्रमुख रूप से उठाया जाता है, वह है तलाक का। यह प्रथा भी अरब में हजारों वर्ष (इस्लाम आने के) पहिले से चली आ रही थी। अपने अपने देश में आवश्यकता के अनुसार देशवासी परम्पराएं डाल लेते हैं। आज भी यही स्थिति है। मोहम्मद साहब ने समय और आवश्यकताओं को देखते हुये उस समय जो उचित व श्रेष्ठ समझा उसे लागू किया। इस प्रकार अरब की परम्पराएं जो मुसलमानों के लिये हैं, वही शरिअत है। तलाक के विषय में भी यही सिद्धान्त लागू होता है। तलाक के सम्बन्ध में शरिअत के आधार पर परम्पराएं अच्छी हैं या बुरी हैं, इस प्रश्न को अलग करके मैं यही कहना चाहता हूं कि वे अरब की हैं और अरब वालों के लिये हैं। अतः यदि मुसलमान शरिअत के आधार पर काम करना चाहता है तो अच्छा होगा कि वह अरब चला जावे और अरब की सीमा में शरिअत के अनुसार जीवन बिताये और जन्नत पाये। यद्यपि तलाक का वैधानिक और व्यावहारिक रूप सामान्य रूप से भारत में नहीं है और न था, फिर भी समय के परिवर्तन से भारत में तलाक होने लगे हैं। समय के फेर से तलाक प्रथा विश्व के प्रत्येक देश में स्थापित हो गई है। भारत में भी इसके लिये नियम बने हैं। भारतीय समाज उन्हीं नियमों के आधीन तलाक के मामले निपटाता है। मुसलमान भी स्वतन्त्र हैं कि वे भारतीय संविधान के नियमों के आधीन तलाक लें और दें और अरब के संविधान शरिअत की आधीनता का भारत में परित्याग कर दें।

तलाक की जो प्रथा भारत के मुसलमानों में प्रचलित है वह यह है कि एक साथ ३ बार "तलाक" शब्द के उच्चारण से स्त्री से सम्बन्ध-विच्छेद मान्य हो जाता है। पर कुरान के हवाले से मुस्लिम विद्वान इस प्रथा को गलत बतलाते हैं। मेरा ध्येय इस प्रथा की अच्छाइयों और बुराइयों का विश्लेषण करना नहीं है। मैं तो स्पष्ट कहना चाहता हूं कि जो बात कुरान कह रही है, वही बात वर्तमान अदालतें कर रही हैं अर्थात तलाक के लिये पर्याप्त समय देना और परस्पर समझौते का पूरा वातावरण बनाना। इतना होने पर भी यदि समझौता नहीं हो सकता तो दोनों पक्षों के हितों का ध्यान रखते हुये सम्बन्ध विच्छेद के आदेश देना। इसलिये ऐसा कोई कारण नहीं है कि जब कुरान के निर्देशों से मिलते वाला लाभ अदालतों से मिल

रहा है, तब मुसलमान भारतीय संविधान के मातहत न चलकर बताल कुरान और शरीअत को इस प्रथा का आधार बनाने के लिये आन्दोलित हों? इससे यह स्पष्ट

ओम हमें प्रतीत होता है कि मुसलमानों को काम और नाम से मतलब नहीं है; उन्हें मतलब है इस्लामी राज्य और इस्लामी व्यवस्था से, जो बाकी के विश्व से अपने को अलग रखकर, स्वकेन्द्रित होकर, केवल अकेली रहना चाहती है। अतः भारतीय संविधान कितना ही श्रेष्ठ फल दे, न्याय दे, मुसलमान उसे

ॐ स्वीकार नहीं कर सकते। गतदिनांक १-२-८६ के दैनिक "नईदुनिया" इन्दौर का अंक मेरे सामने है। इसके अनुसार दिनांक ३१-१-८६ को भोपाल में मुसलमानों की बड़ी रैली हुई थी। सभी राजनैतिक दल के मुसलमान, नेता इसमें शामिल थे तथा बाहर से भी काफी लोग आये थे। निजी प्रतिनिधि द्वारा जो रिपोर्ट समाचार पत्र में दी गई है उसका एक अंश मैं ज्यों का त्यों नीचे दे रहा हूं :-

" उनके चेहरे पर तनाव और आक्रोश था। बैनरों पर लिखा था कि खामोशी हमारी कमजोरी नहीं है, यह आने वाले तूफान का संकेत है। खुदा के कानून में इन्सान का किसी भी किस्म का हस्तक्षेप बरदाश्त नहीं किया जायेगा। हमारा सर्वोच्च न्यायालय कुरान है। हमारे खुदाई कानून पर हम अपना जान माल सब कुछ कुर्बान करने को तय्यार हैं। हिन्दू-मुस्लिम इत्तेहाद, जिन्दाबाद जिन्दाबाद" (नई दुनिया" इन्दौर दि. १-२-८६ पृष्ठ ८) (रेखांकन मेरा)। कांग्रेस, कांग्रेसी सरकार और प्रत्येक हिन्दू को इससे विदित हो जाना चाहिये कि भारत में ही एक मुस्लिम भारत बन गया है ~~सा~~ और उसमें समानान्तर न्यायालय और संविधान बन गया है। ऐसी अवस्था में समझौता नाम की कोई चीज हो ही नहीं सकती क्योंकि इस्लाम शक्ति आधारित विचार धारा है और प्रत्येक मुसलमान अपने को इस्लाम का सिपाही मानता है। अतः एक ही रास्ता है कि मुसलमानों से कह दिया जाये कि भारत एक स्वतन्त्र देश है, यह एक देश और एक राज्य है। इसका एक संविधान है। पाकिस्तान के रूप में एक समानान्तर राज्य सन १९४७ में उन्हें दे दिया गया है। अगर वे भारतीय संविधान को स्वीकार नहीं करते तो किसी मुस्लिम देश में चले जावें। यह भारत है हिन्दू राष्ट्र है और हिन्दू राष्ट्र रहेगा।

एक प्रश्न जो बार बार उठाया जाता है और ऊपर दिये गये बैनरों के विवरण में भी है ~~कि~~ वह यह है कि खुदा के कानून में इन्सानी दखल बरदाश्त न होगा। मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूं कि कुरान और शरिअत, ईश्वरीय नियम है या नहीं इस पर अलग से पुस्तक लिखी जा सकती है। दैनिक "नई दुनिया" इन्दौर के गत २६-१-८६ के गणतन्त्र परिशिष्टांक में श्री बालकृष्ण पंजाबी ने एक लेख "मध्य युगीन भारत में विधि और न्याय व्यवस्था" शीर्षक से लिखा है। इसके दो पैरा शरिअत से सम्बन्ध रखते हैं। उन्हें दे रहा हूं :-

" इस्लाम के प्रसार युग में फिकह (शरिअत कानून) की व्याख्या को लेकर

३१८

इस्लामी विधि शास्त्र के विभिन्न स्कूलों या मतों का जन्म हुआ किन्तु अन्ततः चार विधि शास्त्रियों के मतों को इस्लामी विधि में सर्वाधिक प्रमाणित माना गया। ये मत या स्कूल अपने संस्थापकों के नाम से जाने गये। (१) हनफी (अबू हनीफा ६९९ से ७६७) (२) मलकी (मालिक इब्न अनस ७१३ से ७९५) (३) शाफी (अशशाफी ७६७ से ८२०) और (४) हंबली (अहमद बिन हम्बल ७८० से ८५५)। भारत में हनफी मत का अनुसरण किया जाता है।"

"इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं, एक तो यह कि फिक़ह अथवा शरिअत का मूल स्रोत तो कुरान और सुन्नत ही है, परन्तु स्थान और स्थिति के अनुसार उनकी अलग अलग व्याख्यायें इस्लामी जगत के अलग अलग हिस्सों में स्वीकार की गई और सभी को सही माना गया। दूसरे यह कि शरिअत (मुसलिम कानून) की स्थापना उम्मयद और अब्बासी खलीफाओं के काल में हजरत मोहम्मद साहब की वफात के करीब दो सौ साल बाद हुई। भारत में बहु-संख्यक प्रजा गैर-मुसलमान थी इसलिये यहां मुसलिम विधि के कार्यान्वयन-सम्बन्धी ब्यौरों के विषय में अक्सर मतभेद होते रहे।"

पाठक स्वयं विचार करें। यदि मनुष्यों ने फिक़ह पर व्याख्या न की होती तो ये चार मत न तैयार हुए होते। उचित तो यह था और अब भी है कि कांग्रेसी, कांग्रेसी सरकार और हिन्दू इस्लाम का विस्तृत और गहरा अध्ययन करें और पूरी खोज करके पता लगायें कि विभिन्न मुसलिम देशों में शरिअत का क्या रूप है। और भारत में पिछले १४०० साल में किन किन स्थानों में शरिअत किस रूप में मानी गई, इसका विस्तृत ब्यौरा समाज और लोक सभा के सामने रखें तथा इस पर खुली बहस करायें। इस्लाम गोपनीय विचारधारा है। ऊपर से कुछ दिखाई देती है पर भीतर से कुछ और होती है। उपर्युक्त सुझाव पर अमल होने के पहिले मैं पाठकों को इसी विषय पर संविधान सभा में हुई बहस से परिचित कराता हूं।

"पायनियर" (अंग्रेजी दैनिक, लखनऊ) के दि० ८-३-८५ के अंक में विद्वान लेखक श्री इन्द्रजीत ने "समान नागरिक नियम" शीर्षक एक लेख लिखा है। इसमें उन्होंने बतलाया कि प्रस्तावित संविधान की धारा ३५ (अब धारा ४४) में समान नागरिक नियम बनाने का प्राविधान रखा गया था। इस धारा पर मुसलिम सदस्य सर्वश्री मोहम्मद इस्माइल, नजीरुद्दीन अहमद, महमूद अली बेग एवं पोकर ने इस आशय के संशोधन पेश किये कि समान नागरिक कानून उन पर लागू न किया जावे जो उसे नहीं चाहते अथवा जिनके अपने व्यक्तिगत कानून हैं। इसमें मंशा मुसलमानों की यह थी कि उनका परसनल ला स्वतन्त्र रूप से उन्हीं पर (मुसलमानों पर) लागू रखा जाये। इस पर २३ नवम्बर १९४८ को बहस हुई। उपर्युक्त सभी सदस्यों को बोलने का पूरा मौका दिया गया। उसके बाद संविधान समिति की ओर से सर्वश्री के. एम. मुंशी, अलादी कृष्णा स्वामी अय्यर तथा डा. अम्बेदकर ने इन आपत्तियों का उत्तर दिया। वैसे तो यह बहस पूरी की पूरी पढ़ने लायक है पर मैं यहां श्री इन्द्रजीत के लेख से उक्त बहस का सार दे रहा हूं।

श्री के. एम मुंशी ने कहा कि इस धारा में कोई ज्यादती करने वाली बात नहीं है,

और यह धारा १५ जो मूल अधिकार देती है, के विरुद्ध है। अंग्रेजों के समय में जब शरिअत एक्ट (१९३७) पास हुआ था तो खोजा और कच्छी मेमन, दोनों ने इसका विरोध किया था और दुखी हुये थे क्योंकि जबसे वे मुसलमान हुए थे, तब से उन पर हिन्दू नियम लागू थे और वे परिवर्तन नहीं चाहते थे। पर मुसलमानों ने दबाव डाल कर खोजा तथा कच्छी मेमन दोनों पर उनकी इच्छा के विरुद्ध शरिअत एक्ट लाद दिया। श्री मुंशी ने स्पष्ट कहा कि अंग्रेजों ने मुसलमानों के बीच यह गलत धारणा पैदा कर दी है कि शरिअत मजहब का अंग है। अलाउद्दीन खिलजी ने अनेक नियम बनाये थे जो शरिअत के विरुद्ध थे। यह स्मरणीय है कि अलाउद्दीन भारत में पहिली मुस्लिम सल्तनत स्थापित करने वाला था।

श्री अल्लादी कृष्ण स्वामी अय्यर ने मुंह तोड़ उत्तर दिया। उन्होंने कहा कि शरिअत में अनुबन्ध, विवाह, तलाक, फौजदारी नियम तथा वे सभी विषय हैं जो मुस्लिम ला में आते हैं। जब अंग्रेजों ने इस देश में राज्य स्थापित किया तो उन्होंने फौजदारी नियम और अनुबन्ध नियम समान रूप से लागू किये पर मुसलमानों ने उस पर चूं तक नहीं की। इस देश में अनुबन्ध नियम (ला आफ कान्ट्रेक्ट) समान रूप से लागू है। इसी तरह हस्तान्तरण कानून एंग्लो-इण्डियन विधि-संहिता पर आधारित है। ये सब कुरान और शरिअत के आधार पर नहीं हैं।

इसके बाद डा. अम्बेदकर ने समस्या की आत्मा को छूते हुये दो निष्कर्ष दिये। (१) मुस्लिम परसनल ला न तो अपरिवर्तनीय है (अर्थात परिवर्तनीय है) और न समान रूप से भारत में माना जाता है। उन्होंने यह भी कहा कि १९३५ तक उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त हिन्दू कानून के अन्तरगत शासित था। सन १९३९ में इस हिन्दू कानून को रद्द कर अंग्रेजों ने मुस्लिम कानून लागू किया। इसी तरह १९३७ तक संयुक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश), मध्य प्रदेश तथा बम्बई में अधिकांश रूप से उत्तराधिकार के मामले हिन्दू कानून से निपटाए जाते थे। उत्तर मलाबार में "मरुमक्काथायम" जो मातृ पक्ष का, पितृ पक्ष का नहीं, कानून के मातहत हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। (२) उन्होंने यह भी कहा कि सरकार ऐसे नियम बनायेगी और धीरे धीरे लागू करेगी। ऐसा ही १९३७ में शरिअत एक्ट के साथ हुआ था। आगे लेखक श्री इन्द्रजीत ने लिखा है कि इजिप्ट (मिश्र), पाकिस्तान, ट्यूनीसिया आदि तमाम देशों ने परिवर्तन किये हैं।

इस सम्बन्ध में "धर्मयुग" गत २-२-८६ से ८ फरवरी ८६ तक के अंक में प्रख्यात पत्रकार श्री अरुण शौरी का लम्बा लेख आया है। विद्वान लेखक ने अनेक उदाहरण देकर सिद्ध किया है कि शरिअत ईश्वरीय इलहाम नहीं है और प्रारम्भ से अब तक उसमें परिवर्तन होते आये हैं तथा भारत में ही अनेक कानून शरिअत को नकारते हुए बने हैं। कुछ कानूनों की सूची जानकारी के लिये दे रहा हूं :—

क्रमशः

शरिअत - २०

शरिअत के अनुसार	नये कानून के अनुसार
(१) धर्म त्याग तथा गैर मुसलमान से शादी करने पर जायदाद से वंचित हो जाना, विवाह का टूट जाना तथा सजाय मौत	१८५० का कास्ट डिसेबिलिटी एक्ट इनसब को निरस्त कर देता है।
(२) मुसलिम फौजदारी कानून, हाथ पैर काटना आदि अनेक प्रविधान	१८६० जाब्ता फौजदारी और १८९८ में भारतीय अपराध दण्ड संहिता समान और सामान्य
(३) मुसलिम शहादत कानून, अरबी परम्पराओं के आधार पर गवाहियां तथा सबूत	१८७२ का भारतीय साक्ष्य अधिनियम सामान्य और समान नियम
(४) बाल विवाह	१९२९ में कानूनी तौर पर गैर-कानूनी करार दिया गया।
(५) पति को तलाक का एक तरफा अधिकार	१९३९ में मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम से पत्नी को अपनी बात कहने का अधिकार

इसके अलावा १९५४ में विशेष विवाह अधिनियम के आधीन मुस्लिम विवाहित दम्पति को अपनी शादी पंजीकृत कराने का अधिकार दिया गया।

ऊपर मैंने कहा है कि मुसलमानों से कह दिया जाये कि या तो वे भारतीय संविधान के मातहत रहें या शरिअत के मातहत रहने के लिये किसी भी मुस्लिम देश में चले जायें। श्री अरुण शौरी अपने लेख में लिखते हैं " तीन बातें स्पष्ट हैं; पहली यह कि हमारे संविधान के होते हुए किसी भी धार्मिक या अन्य समुदाय को इस बात का हक नहीं है कि वह सामान्य नागरिकों पर लागू होने वाले कानून से अलग अन्य कानून की मांग करे। (धर्मयुग २-२-८६ से ८-२-८६, पृष्ठ १९)।

श्रीमती शाहबानो के मामले में जो फैसला हमारे सर्वोच्च न्यायालय ने दिया है, उसमें फौजदारी संहिता की धारा १२५ के मातहत निर्वाह भत्ता श्रीमती शाहबानो को दिलाया गया है। भारत में संविधान लागू है और इसी आधार पर देश के प्रत्येक नागरिक का नियमन होता है। मुसलमान भी जितनी सुविधा पा रहा है, वह भी भारतीय संविधान के अन्तर्गत ही है। जब सुविधा मिलने की बात है तब संविधान की आड़ में सब लिया जा रहा है, पर जब फैसला संविधान की आड़ में दिया गया तो वहां शरिअत का बहाना खड़ा कर दिया गया।

मैं पहिले भी कह चुका हूं कि कुरान, हदीस और शरिअत हो सकता है अच्छा कह रही हो, पर वे भारत की नहीं हैं, न भारतीय जीवन उनके आधार पर बना है, न आगे चलने वाला है और न आज चल रहा है। भारत ने "स्वराज्य" पाया है और वह अपने "स्व" के आधार पर राज्य चलायेगा।

मुसलमानों को उनके "स्व" के अनुसार राज्य चलाने के लिये भारत ने पाकिस्तान दे दिया। फैसला हो चुका, अब बाकी भाग में खुदा का कोई साझा नहीं है और न भारत की व्यवस्था में अरबी परम्पराओं को पेश किया जा सकता है। भारतीय संविधान के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया है। यदि मुसलमानों को आपत्ति है तो वे संविधान के अन्तर्गत माननीय अदालत से पुनर्विचार करने की प्रार्थना कर सकते हैं।

इन प्रश्नों पर ही नहीं, सभी प्रश्नों पर मुसलमान मजहब की आड़ में विरोध करता है। विरोध ही नहीं वरन पूरे देश में आन्दोलन खड़ा करता है, जिहाद के नारे देता है और खून बहाने, बहाने की चुनौती देता है। मैं कांग्रेस से कहना चाहता हूं कि वह मुसलमानों के तुष्टीकरण बंद कर दे और सत्ता के लोभ में मुसलमानों की मांगें निरन्तर मान कर देश का विनाश और न बढ़ायें। अभी तक मुसलिम तुष्टीकरण से देश का जो विनाश हो चुका है, उसे पूरा करने में कई पीढ़ियां लगेंगी। अतः कांग्रेस तथा हिन्दुओं को चाहिये कि वे इस्लाम के नाम से मुसलमानों को मजहबी मानते हुए, उनकी मांगों को पूरा न करें, बल्कि उनकी प्रत्येक मांग का राजनैतिक और कूटनैतिक पहलू भी देखें और यह भी देखें कि उनकी मांगों की आड़ में उनका ध्येय क्या है? केवल मजहब के नाम से मुसलमानों को मिलने वाली सभी सुविधाएं बंद होनी चाहिये। इस्लाम मजहब नहीं है, वह साम्राज्यवादी राजनीति है।

परेशानी मुसलमानों से नहीं है, कुरान, हदीस और शरिअत से नहीं है, बल्कि परेशानी तो कांग्रेस और हिन्दू समाज से है। १२६४ वर्ष के सम्पर्क के बाद भी तथा ४७ में देश के विभाजन के बाद भी, कांग्रेस और हिन्दू समाज ने यह समझने की कोशिश नहीं की कि इस्लाम के नाम पर काम करने वाला मुस्लिम समाज का वास्तविक रूप और चरित्र क्या है? इस सम्बन्ध में मैंने जो नतीजे निकाले हैं उन्हें तथा अध्ययन हेतु सब के सामने रख रहा हूं।

कुरान और हदीस इस्लाम के आधार हैं। मुसलमानों का कहना है कि ये अल्लाह के पैगाम हैं और इनका एक बिन्दु भी नहीं बदला जा सकता। मुसलमानों ने एक विचित्र सिद्धान्त इसके लिये बना रखा है। उनका कहना है कि कोई भी व्यक्ति इनका अर्थ नहीं लगा सकता और न उनका विश्लेषण ही कर सकता है। यह विषय लम्बा है, अतः केवल चन्द बातें ही जो अति आवश्यक हैं, यहां बतला रहा हूं।

मुसलमानों का उपर्युक्त कथन बिलकुल निराधार है। यह इस्लाम के वास्तविक स्वरूप को न देखने देने का तथा हर बात में मजहब और ईश्वरीय पैगाम की आड़ में उसके वास्तविक रूप को न समझने देने का बहाना मात्र है। ॥ओम॥ मुसलमानों ने इस बहाने को भारत में अभेद्य कवच की तरह इस्तेमाल कर इस्लाम को गोपनीय विचारधारा तथा मुसलिम समाज को गोपनीय समाज बना रखा है। इस अभेद्य कवच को तोड़ कर इस्लाम को खुली ॥ॐ॥ बहस में लाना जरूरी है।

गत दि २५-८-८६ के नई दुनियां दैनिक अखबार में श्री कुतुबउद्दीन शकरवाला, ६२० जवाहर मार्ग इन्दौर का पत्र सम्पादक के नाम छपा था जिसमें उन्होंने लिखा है "इस्लाम में निकाह और खुला की शैरायत पढ़कर लगा कि अगर ईमानदारी से शरिअत के मुताबिक अमल किया ~~जाय~~ जावे, तो तलाक जैसी परिस्थिति ही न आये। ये बात आश्चर्यजनक है कि शाहबानो प्रकरण में अपने आपको कट्टरपंथी बताने वाले तथा कथित धार्मिक नेता मुस्लिम समाज को को शरिअत में तलाक देने की सही स्थिति और नियम न बता सके। शरिअत की सही जानकारी जब आम मुसलमान को ही न हो तब गैर-मुसलमान अगर किसी मामले में कोई निर्णय दे तो इसमें हल्ला मचाने की क्या बात है।" शाहबानो के मामले में ही अनेक लेख और सम्पादक के नाम प्रेषित पत्र पढ़ने को मिले। मुसलमान यही कहते हैं कि कुरान, हदीस या शरिअत समझो नहीं। पर प्रश्न यह है कि क्या मुसलमानों ने कभी उन्हें समझाने का प्रयत्न किया है। मेरी आयु ६८ वर्ष की हो रही है। आज तक मैंने न तो देखा और न सुना कि कहीं पर किसी मुसलिम मौलाना ने कुरान हदीस और शरिअत पर प्रवचन किया हो तथा विश्व के गैर-मुसलमानों को समझाया हो, उनके साथ चर्चा की हो या प्रश्नों के उत्तर दिये हों। हम तो यह जानते हैं, वर्तमान समय में स्वामी चिन्मयानन्द जी ने लगभग ८०० गीताज्ञान यज्ञ आयोजित किये हैं तथा विश्व के विभिन्न देशों में महान दार्शनिक, वैज्ञानिक, प्रशासक, कुलपति, व्यापारी आदि के प्रश्नों के उत्तर दे कर गीता समझाने का उन्होंने प्रयास किया है। क्या ऐसा साहस मुसलिम मौलाना करेंगे? यह हो नहीं सकता क्योंकि कुरान समयानुसार और तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उतरा है, मोहम्मद साहब के निर्णयों और आदेशों का वह संग्रह है मात्र है। इसमें सार्वभौमिकता और समझने तथा समझाने का स्थान बहुत कम है। मोहम्मद साहब जब स्वयं अपने विरोध में एक शब्द भी सहन नहीं कर सकते थे तब आज का मुसलमान कैसे सहन करेगा? जब विरोध सहन नहीं तब गैर-मुसलमान के सामने कुरान, हदीस एवं शरिअत का लाना सम्भव ही नहीं है। सुनने के बाद प्रश्न होंगे और उनके उत्तर भी देने होंगे। हर बात में इस्लाम

जाता है, हर शब्द से इस्लाम की

खतरे में पड़ जायेगा, ~~तब मुसलिम समाज की~~ तौहीनी हो जाती है, हर काम इस्लाम पर आक्रमण घोषित किया जाता है। खुली बहस होने पर सबसे बड़ा घाटा मुसलिम नेताओं और मौलानाओं को होगा। जब प्रश्न गैर मुसलमान करेगा और प्रश्न तथा उत्तर की परम्परा पड़ जायेगी तब मुसलिम समाज का स्वतन्त्र चिन्तन प्रारम्भ हो जावेगा और इन नेताओं और मौलानाओं का कठोर शिकंजा, जो आम मुसलिम समाज पर है वह खत्म हो जायेगा। ऐसी अवस्था में नेताओं और मौलानाओं का जीवन व्यर्थ हो जायेगा। अतः मैं स्पष्ट रूप में मांग करता हूं कि यदि मुसलमान कुरान, हदीस, शरिअत के आधार पर मांग करता है तो उसे इस पर खुली बहस में आजाना चाहिये। यदि वह खुली बहस नहीं चाहता

तो उसे चाहिये कि अपनी मांग बिलकुल बंद कर दे। केवल भारतीय संविधान के आधार पर अपनी मांग रखे। किसी भी चीज को समझने पर उस पर विचार करना आवश्यक रूप से शुरु हो जाता है। सुनने के बाद जब व्यक्ति या व्यक्ति समूह उस पर चर्चा करता है, मुद्दे के दोनों पहलुओं पर गहराई से विचार करता है और अपना निष्कर्ष निकालता है तब वह मुद्दा स्पष्टतः समझा जा सकता है। इस पद्धति को हिन्दू धर्म में सांख्य कहते हैं। पर इस्लाम में बुद्धि लगाना, तर्क करना, प्रश्न करना, दूसरों के विचारों का आदर करना सख्त मना है। इस्लाम का सिद्धान्त है कि आपके लिये "सत्य" हमने तय्यार कर दिया है, अब आप इस "सत्य" के मानने के लिये तय्यार हो जाइये। इसे आप अपने आप स्वीकार कर लें तो ठीक, अन्यथा हम उसे तलवार के बल पर आपको ग्रहण करा देंगे। इस पद्धति में "समझ" का प्रश्न ही नहीं उठता। यह आदेश है, उपदेश नहीं। उपदेश में उपदेश देने वाले का स्वार्थ नहीं होता और पाने वाला अपने निर्णय के लिये स्वतन्त्र होता है। यही कारण है कि इस्लाम में कुरान और हदीस और मोहम्मद साहब का कहना और करना अन्तिम "सत्य" माना जाता है। किसी भी व्यक्ति को चाहे वह मुसलमान ही क्यों न हो, अपनी बुद्धि लगाकर स्वतन्त्र निर्णय लेने का अधिकार नहीं है। मुसलमानों का यह कहना कि कुरान, हदीस और शरिअत को कोई छू नहीं सकता, इसी पद्धति का व्यवहारिक रूप है। अतः निष्कर्ष यही है कि या तो मुसलमान मांग बंद कर दें अन्यथा कांग्रेस सरकार और हिन्दू समाज इस पर खुली बहस आरम्भ कर दें।

इस प्रश्न पर एक मनोवैज्ञानिक पहलू से और विचार करना चाहिये। हर मां अपने बच्चे को "राजा बेटा" ही कहती है, चाहे वह कुरूप ही क्यों न हो। इसी प्रकार प्रत्येक बेटा अपनी मां को प्यार करता है, उसकी सेवा करता है, आदर करता है और देता है, चाहे मां वेश्या या कुलटा ही क्यों न हो। यह मानव और पशु दोनों प्रकृतियों में देखा जा सकता है। इसी प्रकार प्रत्येक देश का देशवासी अपनी परम्पराओं और आदर्शों को प्यार करता है, चाहे उसे दूसरे लोग बुरा ही समझते हों। जब यह सिद्धान्त पूरे विश्व में व्यवहारिक रूप में दिखाई देता है, तब मुसलमान अरब की परम्पराओं को भारत पर लादने की क्यों कोशिश करते हैं और क्यों कांग्रेस एवं कांग्रेसी सरकारें पिछले ३८ वर्षों से लगातार इस्लाम के तलुवे चाट कर उसे भारत का भाग्य विधाता बनाए चली जा रही हैं। हिन्दू तो सो रहा है, उसका नेतृत्व जुझारु नहीं है। अतः स्थिति ऐसी बन गई है कि मुसलमान अपनी हर मांग विदेशी संस्कारों, आदर्शों और मान्यताओं के आधार पर सामने रखता है तथा हिन्दू, कांग्रेस और कांग्रेसी सरकारें धीरे धीरे उन्हें मान कर विदेशी शासन तथा देश के पुनः विभाजन की नींव मजबूत करते जा रहे हैं। मुसलमान भारत में जन्मा, यहीं पला और यहां से ही उसने सब कुछ पाया। पर वह भारत की सभी परम्पराओं और आदर्शों को घृणा तथा नकार रहे हैं, ठुकरा रहे हैं और उनकी जगह अरब की परम्पराओं और विधान के प्रति निष्ठावान बना रहना चाहता है। आखिर मुसलमान

शरिअत को आधार क्यों मानता है? मान लिया जाये कि हिन्दू से मुसलमान होने पर उनका प्रेम इस्लाम के मूल स्थान से हो गया पर प्रेम का अर्थ नफरत तो नहीं है। जिस देश से उन्हें शरीर मिला, जीवन मिला और वहां सैकड़ों पीढ़ियों से रह रहे हैं और आज भी जिस देश के सभी साधनों के आधार पर उनका जीवन चल रहा है, उस देश का उपकार भूलकर अरब के लिये अपना सर्वस्व निछावर करना क्या कुफ्र नहीं है? अरबी भाषा में "कुफ्र" का अर्थ होता है "ढांपना"। किसान को काफिर ~~कहकर~~ कहते हैं, क्योंकि वह बीज को जमीन में "ढांपता" है। अन्धकार को काफिर कहते हैं क्योंकि वह वस्तुओं को देखने नहीं देता। ईश्वर के उपकार को ढांप कर अपना अहं रखना यही कुफ्र है। अब आप विचार करें कि प्रत्यक्ष देश के प्रत्यक्ष उपकारों को ढांप कर उस देश के गीत गाना, उस देश की परम्पराओं के लिये मरना, मारना, उस देश के लोगों को अपना आदर्श मानना जिस देश से भारतीय मुसलमानों का कोई सम्बन्ध नहीं और न वह देश इन्हें जीवित रखने के ही साधन दे रहा है, क्या शुद्ध "कुफ्र" नहीं है? हिन्दू धर्म कहता है कि शरीर से ही सब होता है। जब शरीर से ही धन और धर्म का अर्जन होता है और भारत उन्हें शरीर और उसे रखने के सभी साधन दे रहा है, तब भारत ही उनके धन और धर्म के अर्जन में साधक है। उसे ढांप कर रखना सबसे बड़ा कुफ्र है, जो भारतीय मुसलमान कर रहे हैं। इतना होने पर भी मुसलमान समझना नहीं चाहता। शरिअत के आधीन रह कर वह अपने को पवित्र मानता है, पर देह देने वाले, देह को रख कर जन्नत पाने वाले, देह को रख कर कुरान पढ़ने और सुनने के साधन भारत और उसके संविधान को ठोकर मारता है, भारत को वह काफिरों का देश मानता है। यदि वह विदेशी संविधान पर इतना नाज करता है और अपने को पवित्र मानता है, कांग्रेसी और कांग्रेसी सरकारें मुसलमानों को ठीक समझते हुए सब सुविधाएं देती हैं, प्रोत्साहन देती हैं तथा इस नीति को ठीक समझती हैं, तो हम हिन्दुओं का अपने देश की परम्पराओं के प्रति निष्ठावान होना और उन्हें राज्य तथा समाज का आधार मानना कैसे गलत हो सकता है? हम हिन्दुओं की स्थिति मुसलमानों से हजार गुना अच्छी है। यदि मुसलमान विदेशी परम्पराओं को स्वीकार कर उन्हें भारत पर लादने को गौरव का काम समझता है और अपना अधिकार मानता है तो उनसे हजार गुना अधिक गौरव की बात और अधिकार अपने देश की परम्पराओं को मानने और लागू करने में हिन्दुओं को है। विदेशी परम्पराओं को स्वीकार करना न्याय है तो स्वदेशी परम्पराओं को स्वीकार करना हजार गुना अधिक और अच्छा न्याय है। अतः निष्कर्ष यही निकलता है कि शरिअत विदेशी संविधान है। इसे भारतीय संविधान के ऊपर या उसके विकल्प के रूप में नहीं रहने दिया जायेगा। इस आधार पर मुसलमान मांग बंद कर दें, अन्यथा वे उस देश में चले जायें जहां उन्हें शरियत मिलती है। सन् १९४७ के बंटवारे के अनुसार यह हिन्दू राष्ट्र है। इस समझौते पर कांग्रेस और मुसलमान दोनों के हस्ताक्षर हैं। यदि कांग्रेस और मुसलमान समझौते का आदर नहीं करते तो हिन्दुओं के भी दोबित

कर देना चाहिये कि बंटवारा हुआ ही नहीं और शक्ति के आधार पर पूरे देश को एककार इस्लाम को इस देश में प्रभावहीन बना देना चाहिये।

आइये हम एक पहलू से और विचार करें। हर एक देश अपनी परम्पराओं का आदर करता है और जो परम्पराएँ देश की परम्पराओं के विरुद्ध हों, उन्हें स्वीकार नहीं करता। मुसलमानों से ही पूछिये। हिन्दू मां-बाप की सन्तानें होते हुये, इसी देश में रहते हुये, वे कुरान, हदीस और शरीअत पकड़े हुये हैं और उनके लिये अपनी जान तक देने को तय्यार रहते हैं। वह भारतीय आदर्शों और परम्पराओं को क्यों ठोकर मारते हैं? पर इसके विपरीत अपने मुस्लिम देशों में वे दूसरे मजहब के लोगों को बोलने भी नहीं देते, सब काम इस्लाम के आधार पर ही करते और कराते हैं। रोजों के दिनों में और मुसलमानों पर भी सख्ती होती है और उनसे भी रोजों के नियम मनवा लेते हैं। इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर है कि वे अरबी परम्पराओं को स्वीकार कर चुके हैं तथा उसके विपरीत परम्पराओं को पास नहीं आने देना चाहते। जब वे स्वयं ऐसा व्यवहार कर रहे हैं, तब उन्हें क्या अधिकार है कि वे विदेशी परम्पराओं को भारत पर लादें और उनके आधार पर मांग करें या सुविधा लें। सिकन्दरिया का पुस्तकालय जब जीत लिया गया, तो मुस्लिम सेनापति ने खलीफा से आदेश चाहे कि इनकी पुस्तकों का क्या किया जावे। खलीफा ने आदेश दिया कि यदि इन पुस्तकों में वही लिखा है जो कुरान में है तो कुरान काफी है, उन पुस्तकों को जला दो। अगर उनमें कुरान के विरुद्ध लिखा है तो भी जला दो क्योंकि हम कुरान के विरुद्ध कुछ भी नहीं चाहते। परिणाम यही हुआ कि सिकन्दरिया का विशाल पुस्तकालय जलकर भंडार राख कर दिया गया। मुसलमान अपने विरोध में एक शब्द भी नहीं सुनना चाहता, पर दूसरों पर अपनी विचारधारा, जो दूसरों की विरोधी ही होती है, बलात लादना चाहता है। मोहम्मद साहब ने भी जरा जरा से विरोध के आधार पर कई लोगों का कत्ल करा दिया था। वही मुसलमान विदेशी परम्पराओं को भारत पर लादने का अधिकार समझता है, जबकि इस्लामी परम्पराएँ भारतीय आदर्शों के बिलकुल विपरीत हैं और भारतीय परम्पराओं की तुलना में काफी हद तक अविकसित हैं। मैं यहां शरीअत के इसी पहलू पर खुलासा विचार दे रहा हूं।

मैं पहले ही बतला चुका हूं कि मुस्लिम नेता और मुल्ला लोग शरीअत में दो बातों, विवाह और तलाक, पर ही ज्यादा मचाते हैं। तलाक की तुलना नहीं हो सकती क्योंकि हिन्दू धर्म में विवाह के साथ तलाक नहीं जुड़ी है और न तलाक के उद्देश्य से विवाह होता ही है। विवाह विवाह ही रहता है, सदैव के लिये। अतः शरीअत तथा हिन्दू पद्धति के अनुसार निकाह की तुलना ही सम्भव है।

डा: ताहिर महमूद कानूनी केन्द्र, दिल्ली विश्व विद्यालय तथा इस्लामिक स्टडीज दिल्ली संस्था के अध्यक्ष हैं। उनसे "फ्रन्ट लाइन" पाक्षिक पत्रिका (मद्रास) के प्रतिनिधि श्री पी. रीति शिया रोवर्टी ने आज-काल के प्रकरण पर साक्षात्कार लिया था। अनेक प्रश्नों और उत्तरों में से ६ प्रश्न और उत्तर आपके विचारार्थ यहां दे रहा हूं,

और इस्लामी विवाह से सम्बन्ध रखते हैं। ये प्रश्न और उत्तर अंग्रेजी में हैं। मैं उनका हिन्दी अनुवाद दे रहा हूं-

प्रश्न = शाहबानो के मामले में वह स्वीकार नहीं किया गया (तो क्या प्रश्न शाहबानो के पति धारा गुजारा भत्ता देने के सम्बन्ध में था)

उत्तर - नहीं, क्योंकि शाहबानो एक अमीर और सम्पन्न महिला थी। उसके तीन वयस्क लड़के हैं। उनमें से एक अच्छा वकील है। इस्लामिक नियम में मां का भरण पोषण का भार उसके बच्चों पर होता है, पति पर नहीं।

प्रश्न = ऐसा क्यों?

उत्तर = यह इस्लाम में विवाह की असामान्य (सेक्युलर) धारणा के कारण है। इस्लाम में विवाह की धारणा पवित्र धार्मिक कर्म (संस्कार) या जीवन भर अनिवार्य रूप से सम्बन्ध की नहीं है। यह एक पुरुष और एक स्त्री के बीच अपनी सुविधा के अनुकूल सम्बन्ध है। यदि इनमें से एक दूसरे से तंग आ गया या इस सम्बन्ध से ऊब गया तो वे सम्बन्ध से अलग हो जाते हैं। जैसे ही वे अलग हो जाते हैं, फिर उनका कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। अतः यदि पत्नी के गुजर बसर का कोई प्रबन्ध है तो पति जिम्मेदारी से बरी हो जाता है। इस्लामिक कानून के अनुसार दोनों अपनी नई जिन्दगी चलाने के लिये स्वतन्त्र हैं।

प्रश्न = यह ठीक है कि पुरुष अपनी सम्पत्ति के साथ स्वतन्त्र हो जाता है, पर स्त्री के पास क्या रहता है जिसके आधार पर वह नया जीवन चला सके।

उत्तर = जो भी पति ने उसे दे दिया है वह वापस नहीं होगा। मेहर जो पति ने देने के लिये कहा है वह तुरन्त देना पड़ेगी यदि पहिले नहीं दी गई है। यदि रकम कम है तो अदालत द्वारा बढ़ाई जा सकती है। यदि कोई सम्पत्ति तलाक के पहिले पत्नी के अधिकार में थी वह उससे वापस नहीं ली जा सकती।

प्रश्न = अब मेरा ख्याल है कि अधिकांश महिलाएं घर को सम्भालती हैं और बच्चों को पालती हैं। पुरुष जीविका कमाने में लगा रहता है। यह व्यवस्था अक्सर श्रम विभाजन कही जाती है। जो दोनों पक्षों को अपना काम करने में स्वतन्त्रता देती है। इसी आधार पर कई विधानों में यह माना जाता है कि पत्नी घर सम्हाल कर बच्चों को गर्भ में धारण कर तथा उन्हें पाल पोस कर बड़ा कर एवं परिवार की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर अपने काम एवं पति को जीविका-उपार्जन के लिये स्वतन्त्र कर परिवार में आर्थिक सहयोग देती है। यदि ऐसा है तो अपने आर्थिक सहयोग के फल स्वरूप पत्नी के पास सम्पत्ति के रूप में प्रस्तुत करने के लिये क्या रहता है जब कि उसे तलाक दे दिया जाता है।

उत्तर = आप देखें। जैसा भारत में है, उससे भिन्न पाश्चात्य समाज में है। वहां स्त्री के लिये विकल्प है। वह काफी शिक्षित होती है या इतनी शिक्षित होती है कि अपनी इच्छा से नौकरी कर ले। यदि वह कोई नौकरी नहीं करती या उसे छोड़ कर परिवार को सम्हालती है तो दूसरी बात है। किन्तु भारत में अधिकांश

मामलों में या तो स्त्रियां इसलिए अशिक्षित होती हैं या प्राथमिक या माध्यमिक स्तर तक शिक्षित होती हैं, अतः उन्हें कोई नौकरी मिल ही नहीं सकती। वह अपने को घर में रख बच्चे पालने में स्वेच्छा से लग जाती हैं क्योंकि उनके पास कोई विकल्प नहीं होता।

प्रश्न = क्या आप कह रहे हैं कि यह कोई सहयोग नहीं है?

उत्तर = नहीं! यह कैसे आर्थिक सहयोग हो सकता है। इसके विपरीत वह तो भार है। उसे हर हालत में भरण पोषण करना पड़ता है। इस्लामिक कानून में बच्चों को पालने का दायित्व स्त्री का नहीं है। यदि वह कह दे कि "मैं इसे नहीं चाहती" तो पति उसे विवश नहीं कर सकता। उसे अपने (पति को) खर्च पर वैकल्पिक व्यवस्था करनी पड़ेगी।

प्रश्न - किन्तु व्यवहार में ऐसा होगा यह सोचना व्यावहारिक नहीं होगा।

उत्तर = वैधानिक तथा ठेठ भाषा में कहा जाये तो यदि पत्नी कह दे कि "मैं यह काम बच्चों की मां की हैसियत से नहीं किन्तु आर्थिक सहयोग के रूप में कर रही हूं और जैसा आप उपार्जन करते हैं, वैसे ही मैं भी परिवार में सहयोग दे रही हूं" तो वह इस्लामी धारणा के अनुसार उसे मानना लेने का अधिकार है। यह तलाक के बाद ही नहीं वरन वैवाहिक जीवन में भी यदि वह घोषित कर दे कि "वह जो सेवा दे रही है वह बच्चों की मां के रूप में नहीं वरन एक नौकरानी अथवा पति के एजेण्ट के रूप में है" तो वह मावजे की मांग कर सकती है।

इसके साथ ही श्री माइल खैराबादी (प्रकाशक - मर्कजी मकतबा इस्लामी दिल्ली) द्वारा लिखित "इस्लामी शरिअत" के पृष्ठ १३८ से निम्न उद्धरण दे रहा हूं जो इस्लामी पद्धति के विवाह से सम्बन्धित है :-

"(१) जिनसे निकाह नहीं हो सकता :- वह सौतेली मां भी हराम है जिसे बाप ने भोग लिया हो। जिससे निकाह किये बिना भोग कर लिया उसकी मां से भी निकाह हराम है।

(८) फूफी और खाला (मौसी) सौतेली फूफी (बाप की सौतेली बहिन) सौतेली खाला (मां की सौतेली बहन) से निकाह हराम है।"

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जायेगा कि इस्लाम में विवाह एक स्वतन्त्र अनुबन्ध है, केवल एक जगह रहने का और संभोग की निजी सुविधा का। वह धार्मिक बन्धन बिलकुल नहीं है। जब विवाह केवल अपनी सुविधा और इच्छानुसार रहने का ही नाम है तब और कोई सम्बन्ध बनाना सम्भव ही नहीं है। पुत्र के साथ पिता की मां का क्या सम्बन्ध है - इसका खुलासा इस्लामी पद्धति में हो जाता है। विवाह सम्बन्ध में शरिअत कह रही है कि "वह सौतेली मां भी हराम है जिसे बाप ने भोग कर लिया हो" अर्थात यदि बाप शादी करके लड़की लो आया और भोग नहीं किया तथा किसी भी कारण से रिश्ता टूट गया तो लड़के को अधिकार है कि वह अपने बाप की ऐसी पत्नी से विवाह कर सकता है। इसी प्रकार शरिअत कहती है कि "जिससे निकाह किये बिना भोग कर लिया, उसकी मां से निकाह हराम है"। अर्थात अगर भोग नहीं किया तो उसकी मां से निकाह हो सकता है। इस्लाम में "भोग करना या न करना" एक नैतिक कसौटी है। इसी आधार पर

अनेक कार्यों को हराम और हलाल (अनुचित और उचित) ठहराया जाता है। ऊपर दिये हुये उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा कि बाप के भोग कर लेने पर सौतेली मां हराम है अर्थात उस मां का सम्बन्ध बाप के साथ विवाह, आयु, पद आदि के अनुसार नहीं है वरन बाप द्वारा भोग करना ही एक आधार है। मैं इस विषय में विशेष टिप्पणी नहीं दूंगा। प्रत्येक गैर मुसलमान को चाहिये कि वह शरिअत और इस्लाम का गहराई से अध्ययन करे और अपने निष्कर्ष अपने आप निकाले।

इसके विपरीत हिन्दू विवाह पद्धति में विवाह दो हृदयों का मिलन है। पति-पत्नी के "दो शरीर होते हुए भी वे एक आत्मा हैं", ऐसी भावना है। पत्नी केवल पत्नी ही नहीं वरन वह धर्म पत्नी है। हिन्दू विवाह पद्धति एक विशुद्ध धार्मिक संस्कार है जो मानवता के सतत प्रेमोत्कर्ष का द्योतक है। वह इस लोक से ही नहीं, परलोक से भी सम्बद्ध है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की सिद्धि का वह प्रथम सोपान है। संसार के सभी विद्वानों तथा विचारकों ने स्वीकार किया है कि इस ब्राह्म-विवाह पद्धति से श्रेष्ठ पद्धति और नहीं है। विवाह का अर्थ पूर्ण समर्पण है, अतः पति-पत्नी के लिये और पत्नी पति के लिये समर्पित हो जाती है। बच्चे उसे मां, चाची, मामी आदि मान लेते हैं तथा तदानुसार वे परस्पर व्यवहार करते हैं। हिन्दू जीवन में संभोग कोई कसौटी नहीं है जैसा कि इस्लाम में है। हम इस पर ज्यादा लिखने की आवश्यकता नहीं समझते। पुत्र और मां का सम्बन्ध नैसर्गिक है। मां का दर्जा सर्वश्रेष्ठ है और मां अपने बच्चे को अपना अंग समझ कर तथा नैसर्गिक कर्तव्य समझ कर पालती है, कभी पराया समझ कर नहीं। पुत्र, मां और बाप दोनों का अंश है, दोनों का आत्मज, अतः पति के पुत्र को पालना और पति से उसकी इज्जत मांगना हिन्दू समाज में कल्पनातीत है। इस संक्षिप्त विवरण तथा उदाहरण देने का मेरा उद्देश्य एक ही है, और यह कि दोनों पद्धतियों का अन्तर समझाना। इस प्रकार जो शरिअत भारतीय परम्पराओं और आदर्शों के बिलकुल विपरीत है और लाखों वर्षों से चली आ रही सिद्ध हिन्दू परम्पराओं की तुलना में अभी प्रारम्भिक अवस्था में ही है, उसे हम क्यों स्वीकार कर लें? जब मुसलमान अपने मजहब के एक भी विचार के विरुद्ध कुछ भी सुनना नहीं चाहते, अपने इस्लामी राज्यों में गैर-इस्लामी विचारों को बाहर कहने की इजाजत भी नहीं देते तब उन्हें कोई अधिकार नहीं कि वे हिन्दू राष्ट्र में राष्ट्र के आदर्शों के बिलकुल विपरीत परम्पराओं वाली शरिअत को भारत पर लादें और उसके लिये जिहाद और खून बहाने की धमकी दें।

इस पुस्तक का सार यही है कि किसी भी पहलू से शरिअत भारत को नहीं है और न भारत को इसकी जरूरत है। मुसलमानों को इसके आधार पर मांग करने का अधिकार नहीं है और न भारत शरिअत को चाहता है। हम अपने संस्कारों के आधार पर देश का निर्माण करना चाहते हैं अतः ठीक यही है कि शरिअत को मुसलमान भारत से बाहर अपने मक्का और मदीना ले जायें।

अब मैं अपने अध्ययन के आधार पर इस्लाम के सम्बन्ध में कुछ निष्कर्ष दे रहा हूं:-

(१) प्रत्येक हिन्दू के मन और मस्तिष्क में ठूस ठूस कर भर दिया गया है कि मनुष्य जीवन का ध्येय मोक्ष प्राप्ति है। इसी तरह प्रत्येक मुसलमान के मन और मस्तिष्क में भर दिया गया है कि उसका जीवन इस्लामी साम्राज्य - "हुकूमते-इलाही" की स्थापना के लिये है। इस ध्येय को पाने के लिये वह निष्ठा पूर्वक, अपार धैर्य के साथ, पूरे समर्पण के साथ निरन्तर लगा रहता है, यहां तक कि वह हिंसा के बल पर इस्लाम के प्रचार-प्रसार को क्रियान्वित करता है।

(२) मुसलमान धरती से जुड़ा नहीं है। वह इस्लाम और इस्लामी राज्य से जुड़ा है। वह पाकिस्तान को अच्छा मानता है इसलिये नहीं कि पाकिस्तान एक अच्छा देश है, वरन इसलिये कि वहां इस्लामी राज्य है। पाकिस्तान से इस्लामी राज्य अलग कर दो तो मुसलमान का चोटी कोरा एक दम उलटा हो जायेगा।

(३) इस्लाम राष्ट्र से नहीं जुड़ा है। अतः वह गैर-इस्लामी किसी देश या राष्ट्र से समरस नहीं हो पाता और न उसकी मुख्य धारा में शामिल हो पाता है। वह सदैव अकेला रहा है और आगे भी रहेगा अगर उसकी वर्तमान मान्यताऐं नहीं बदलतीं।

(४) मुसलमान बहुमत शासन में विश्वास नहीं करता। अतः उसमें प्रजातन्त्र नहीं आ सकता। पाकिस्तान और बांगला देश प्रजातन्त्र की स्थापना का प्रयास कर रहे हैं। देखिये उसके परिणाम क्या होते हैं।

(५) इस्लाम स्व-केन्द्रित और बन्द विचार धारा है। वह सिर्फ अपनी बात कहना और उसे मनवाना जानता है।

(६) इस्लाम में सत्य (सात्विक दृष्टि से) अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सहिष्णुता, उदारता सह अस्तित्व एवं सर्व-सम्प्रदाय-सम भाव नहीं है।

(७) मुसलमान गैर इस्लामी देशों में पूरी सुविधाऐं मांगता है और लेता है पर इस्लामी देशों में गैर-मुसलमानों को बोलने तक का अधिकार भी नहीं देता।

(८) इस्लाम मजहब नहीं केवल साम्राज्य वादी राजनीति है।

मैंने विचार आपके सामने रख दिये हैं। यदि पाठक उन पर मनन और चिन्तन करेंगे तथा उसके बाद इन विचारों को अपने जीवन में व्यवहारिक रूप देंगे तब ही पूरा लाभ मिल सकेगा। इन तथ्यों के आधार पर हिन्दू को सावधान तो होना ही है पर अपनी नीति भी निर्धारित करनी है।

मैंने अपनी अर्जी दे दी, मर्जी गैर-मुसलमानों की सामान्य रूप से और हिन्दुओं की विशेष रूप से ॥

[illegible] आर्य नगर, कानपुर — भगवत नारायण भार्गव

— [illegible] शुक्ल एकादशी सम्वत २०४५ — ८ - ४ - १९८८